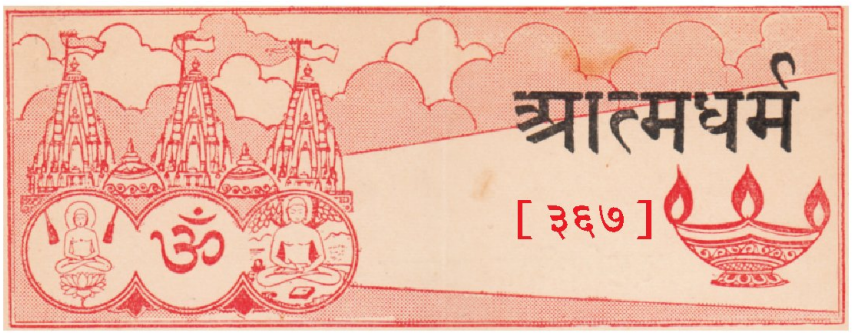

शुद्ध निश्चयनय से जीव का स्वरूप

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहिं और॥२०॥

अर्थः—आत्मा को एकरूप श्रद्धान करना या एकरूप ही जानना चाहिये तथा एक में ही विश्राम लेना चाहिये, निर्मल-समल का विकल्प न करना चाहिये। इसी में सर्वसिद्धि है, दूसरा उपाय नहीं है। (बनारसीदास)

तात्पर्य यह है कि—त्रैकालिक आत्मा तो निर्मल-समल पर्यायों से रहित अभेद, ध्रुव, एकरूप है। मलरहित निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्ध पर्यायें, वह निर्मलरूप है; शुभाशुभभाव, भेद-अभेद का विचार, वह अशुद्धरूप परिणमन होने से समलरूप है। निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय और उसके साथ आत्मद्रव्य को व्यवहारसम्यक्त्व का विषय कहा जाता है। निर्मलपर्यायसहित के आत्मद्रव्य का आश्रय लेने पर विकल्प, राग की उत्पत्ति होती है। वह उपाधि, मलिनता एवं अशुद्धता है। तीनों काल एकरूप रहनेवाला भगवान आत्मा, वह शुद्धनिश्चयनय का विषय है—ऐसे त्रैकालिक आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति, वह निश्चयसम्यग्दर्शन; स्वसन्मुख होकर अपने को एकरूप जानना, वह सम्यक्ज्ञान और अपने एक में ही स्थिर हो जाना, वह सम्यक्चारित्र है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही सर्व सिद्धि अर्थात् सम्यग्दर्शनपना, श्रावकपना, साधुपना, क्षपकश्रेणीपना शुक्लध्यानपना, परिपूर्ण वीतरागपना, केवलज्ञानपना और सिद्धदशा की प्राप्ति होती है। निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निश्चयमोक्षमार्ग ही मुक्ति का उपाय है और दूसरा जो व्यवहारमोक्षमार्ग, वह राग होने से मुक्ति का उपाय नहीं है, ऐसा कहकर सम्यक् अनेकांत किया। ❁

तंत्री—पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार
वीर सं. २५०२ कार्तिक (वार्षिक चंदा रुपये ६=००) वर्ष ३१ अंक-७

समयसार का प्रारंभ अर्थात् साधकभाव का प्रारंभ

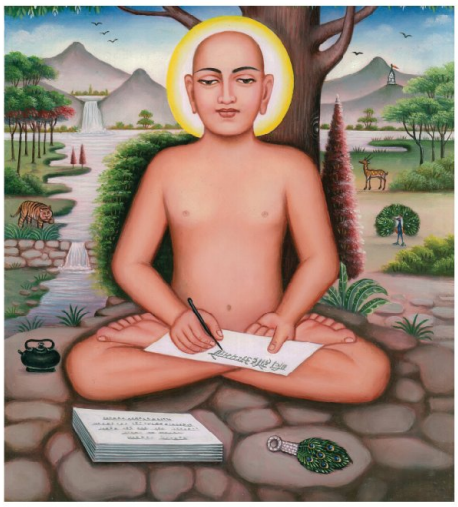

भगवान महावीर का मार्गशीर्ष शुक्ला दसवीं तारीख २८-११-७५ को दीक्षाकल्याणक का मंगल दिवस था। इस मंगल दिवस पर सोनगढ़ में पूज्य स्वामीजी ने श्री समयसार-परमागम पर १८वीं बार प्रवचन का मंगल प्रारंभ किया। अति आनंदोल्लासपूर्ण वातावरण में स्वानुभूति से प्रकाशित अचिंत्य चैतन्यतत्त्व के शांत-अध्यात्मरस का झरना बहने लगा—मानों अनंत सिद्धभगवंतों के मेले के मध्य आराधकभाव का ही महोत्सव प्रारंभ हुआ—ऐसा प्रमोद श्रोताजनों को होता था।

समयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा, उसके भावों का बारंबार घोलन करने से मुमुक्षुओं के हृदय में सुख की लहरें उठती हैं। आत्मा का साध्य ऐसा सिद्धपद, उस सिद्धपद को प्राप्त सिद्ध भगवंतों को आत्मा में ध्येयरूप विराजमान कर समयसार का घोलन करते-करते मोह का नाश हो जावेगा—ऐसे पूर्ण विश्वास के साथ हे भव्य जीवों! तुम समयसार को भावपूर्वक सुनो!

बंधुओं! ऐसा परम वीतराग दिगंबर जिनधर्म, उसमें शुद्धात्मा के गुणगान करनेवाला ऐसा अजोड़ समयसाररूपी परमागम और उसमें भी पूज्य स्वामीजी के मुखारविंद से उनके रहस्यों का निरंतर श्रवण—वह किसी महान योग से हम सबको प्राप्त हुआ है... तो अब आत्मा की सर्व शक्ति से परिणाम को उसमें एकाग्र करके... समय-समय उसके वाच्यरूप शुद्धात्मा का रस बड़ाकर, अंतर में परमशांत आनंद की अनुभूति का झरना प्रगट करो... यही सबका महान कर्तव्य है।

जब संवत् १९७८ में पूज्य कानजीस्वामी के हाथ में यह समयसार आया और उन्होंने पढ़ा तो शीघ्र ही अत्यंत प्रमोद से उनके अंतर में से ऐसे उद्‌गार प्रगट हुए, अहो! यह समयसार तो आत्मा के अशरीरी चैतन्यभाव को दर्शानेवाला महान शास्त्र है, इसका श्रवण करनेवाले भी महा भाग्यशाली हैं।

वार्षिक चंदा
छह रुपये
वर्ष ३१वाँ
अंक ७

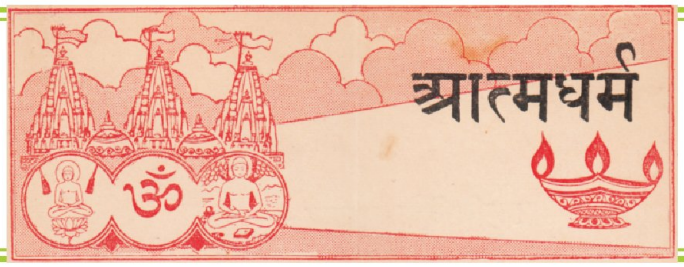

वीर सं. २५०२
कार्तिक
ई.स. १९७५
दिसम्बर

सच्चे गुरु की प्रथम शिक्षा

सच्चे ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि आत्मा अपने दोष से ही बंधन में है। अपना दोष इतना ही है कि—

''इसने अन्य को अर्थात् शरीर, कुटुंब, धन, मकान, रागादि को अपना मान लिया है तथा अपने आत्मा को भूल गया है।'' इसप्रकार की झूठी मान्यता ही सबसे बड़ा दोष है।

कोई कहे दोष तो अनेक हैं, एक ही क्यों कहते हो? तो भाई! अज्ञानियों के सर्व दोषों में 'झूठी मान्यता ही मूलभूत दोष है।' जब तक यह है, तब तक अनेक दोष उत्पन्न होते रहते हैं। पर जब यह आत्मा का सही स्वरूप समझकर झूठी मान्यता स्वयं छोड़ देता है, तब अज्ञानदशा के सब दोष छूट जाते हैं तथा उसके बाद पीछे रहनेवाले दोष भी क्रमशः छूटने लगते हैं।

अतः हमें झूठी मान्यता को दूर करने के लिये तत्त्वज्ञान का अभ्यास करना चाहिये। पर को अपना मानना मिथ्यात्व है, इसको सबसे बड़ा पाप कहा जाता है। आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी कहते हैं कि ''जिनधर्म में तो यह आम्नाय है कि पहले बड़ा पाप छुड़ाकर फिर छोटा पाप छुड़ाया जाता है। अतः मिथ्यात्व को सप्त व्यसन आदि से बड़ा जानकर पहले छुड़ाया है।''

अतः जो भव-भ्रमण से बचना चाहते हैं, वे मिथ्यात्व को अवश्य छोड़े, क्योंकि जब तक इस मिथ्यात्व दोष का त्याग नहीं किया जायेगा, तब तक क्रोध-मान-माया-लोभ इन चारों में से कोई न कोई भाव होता ही रहेगा।

वर्तमान पर्याय बिना का परम सत् पारिणामिकभाव

आचार्यदेव स्वरूप की अलौकिक-अद्भुत घोषणा करते हैं।

अप्पसरूवालंबणभावेण दु सव्वभावपरिहारं।
सक्कदि काउं जीवो तम्हा झाणं हवे सव्वं॥

शुद्धात्म आश्रित भाव से सब भाव का परिहार रे।
यह जीव कर सकता अतः सर्वस्व है वह ध्यान है॥

[नियमसार, गाथा ११९]

इस गाथा पर पूज्य स्वामीजी अद्भुत आनंदसहित प्रवचन करते हुए कहते हैं कि यह परम सत् पारिणामिकभाव के स्वरूप की घोषणा करनेवाली सरस एवं सुंदर गाथा है। सर्वप्रथम त्रैकालिक निज आत्मा कैसा है? वह कहते हैं—भगवान निज आत्मा वर्तमान निर्मल-अनिर्मल पर्याय बिना का, अभेद मूर्ति, ध्रुवभाव होती है, वीतरागभावरूपी धर्म की नहीं। ऐसा वस्तु का स्वरूप है।

सूत्रकार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने मूल गाथा में 'अवलंबन' शब्द का प्रयोग किया है। टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारीदेव ने उस शब्द का अर्थ 'आश्रय' किया है। अवलंबन और आश्रय का एक ही अर्थ है।

निर्मल वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी मोक्षमार्ग की पर्याय अथवा निश्चयधर्मध्यानरूपी पर्याय का आश्रय-आधार त्रैकालिक निज आत्मा है, शुभभावादि नहीं। औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिकभावों से रहित ऐसा परमपारिणामिकभावस्वरूप निज आत्मा के आश्रय से जो निर्मल निश्चयधर्मध्यान की पर्याय प्रगट होती है, वह शुभ-अशुभ समस्त भावों का नाश करने में समर्थ है। चारित्रगुण की शुभभावरूपी विकारी पर्याय से अशुभभाव का अभाव होता है परंतु निश्चयधर्मध्यानरूपी शुद्ध पर्याय शुभ-अशुभ दोनों भावों का नाश करने में समर्थ है, ऐसा अनंत संतों ने श्रोताओं को पुकार-पुकार कर कहा है।

अब निश्चय सम्यग्दर्शन का ध्येयरूप त्रैकालिक निज आत्मा के स्वरूप को कहते हैं—

समस्त पुण्य-पापरूपी परद्रव्यों के अभावरूप नित्यभाव, एकरूपभाव, परमपारिणामिकभाव और पूर्णानंद स्वरूप है।

श्री नियमसार गाथा ३८ की टीका में पद्मप्रभमलधारिदेव निज आत्मा का स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं कि वह 'अनादि-अनंत, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाला, शुद्ध सहज परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है, ऐसा कारणपरमात्मा वह वास्तव में निज आत्मा है।'

गाथा ९१ में भी कहा है कि 'त्रिकाल निरावरण, नित्य आनंद जिसका लक्षण है, ऐसा निरंजन निज परमपारिणामिकभावस्वरूप कारणपरमात्मा, वह निज आत्मा है।' निश्चयधर्मध्यानरूपी शुद्ध पर्याय को ऐसे निज आत्मा का आश्रय-अवलंबन है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी धर्मध्यान, वह निज आत्मा के अवलंबन से प्रगट होता है परंतु दया-दानादि के शुभराग की मंदता से निश्चयधर्मध्यान प्रगट होता हो, ऐसा नहीं है। शुद्ध चैतन्य निज आत्मा के अश्रय से जो निश्चयधर्मध्यानरूपी पर्याय प्रगट हुई है, उसके आश्रय से भी नवीन निश्चयधर्मध्यानरूप पर्याय प्रगट नहीं होती है क्योंकि देव-शास्त्र-गुरु और अपूर्ण तथा पूर्ण शुद्धपर्याय के आश्रय से तो राग की ही उत्पत्ति (होती है)। अखंड—जिसका कदापि खंड न हो, इसलिये वह अखंड है, नित्य-निरावरण-अनादि से निरावरण स्वरूप ही है, त्रैकालिक आत्मद्रव्य को कभी आवरण नहीं होता, आवरणपना तो संसाररूप पर्याय के होता है, सहज—स्वभाविक परमपारिणामिकभावस्वरूप निज आत्मा है। ऐसे निज आत्मा द्रव्य को ध्येय बनाने से अथवा उसमें एकाग्रता करने से पर्याय में निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रपना प्रगट होता है, उसे निर्मल निश्चयप्रायश्चित्त भी कहते हैं।

परमपारिणामिकभाव औदायिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षयोपशमिक इन

चार भावों से भावांतर अर्थात् अन्यभाव है। जिसका संसार किनारा निकट आ गया है ऐसा अति आसन्न भव्य जीव वह परमपारिणामिकभाव की भावना से—एकाग्रता से औदायिकादि चार भावों का परिहार करने में समर्थ है। वास्तव में औदायिकरूपी अशुद्धभाव का उपशम-क्षयोपशम और क्षायिकरूपी शुद्धभाव से परिहार होता है परंतु यहाँ पर औदायिकादि चार भावों के परिहार में क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय का भी परिहार (त्याग) करना कहा है, उसका कारण इसप्रकार है—

शुद्धात्मद्रव्य का ही—अंशी का ही अवलंबन लेने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है। क्षायिकभाव का—शुद्धपर्याय का (अंश का) अवलंबन करने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय कभी प्रगट नहीं होती। इसलिए क्षायिकभाव का भी अवलंबन त्याज्य है। यह जो क्षायिकभाव के अवलंबन का त्याग, उसे यहाँ क्षायिकभाव परिहार कहा गया है।

इस गाथा में ऐसा कहा गया है कि—मोक्षार्थी जीव का परद्रव्यों का और परभावों का आलंबन तो दूर रहो परंतु अपने औदायिकभावों का (समस्त शुभाशुभभावों का), उपशमभावों का (उपशम-सम्यक्त्वादि का), क्षायोपशमिकभावों का (अपूर्ण ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि पर्यायों का) तथा क्षायिकभावों का (सर्वथा शुद्धपर्यायों का) भी अवलंबन छोड़ना चाहिये; मात्र परमपारिणामिकभाव का—शुद्धात्मद्रव्यसामान्य का अवलंबन लेना चाहिये। उसका अवलंबन लेनेवाला भाव ही निश्चय महाव्रत, समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित आदि सब कुछ है। आत्मस्वरूप का अवलंबन, आत्मस्वरूप का आश्रय, आत्मस्वरूप के प्रति सन्मुखता, आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव, आत्मस्वरूप का ध्यान परमपारिणामिकभाव की भावना, 'मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्य सामान्य हूँ' ऐसी परिणति—इन सबका एक अर्थ है।

इन बातों को कहने का सार यह है कि धर्मी जीव को क्षायोपशमिक

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद क्षायिक सम्यग्दर्शन तथा शुद्ध निश्चयचारित्रदशा प्राप्त करना हो तो अपने परमपारिणामिकभावरूप सामान्य के आश्रय से ही क्षायिक सम्यग्दर्शन तथा शुद्धनिश्चय चारित्ररूप दशा प्रगट होगी। क्षायिक सम्यग्दर्शनरूपी शुद्धपर्याय के आश्रय करने से नवीन क्षायिकभावरूप शुद्ध पर्याय और अन्य कोई शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होगी क्योंकि श्री नियमसार की गाथा ५० में क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय को भी परद्रव्य कहा है। जिस प्रकार परद्रव्य में से अपनी निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती; उसी प्रकार क्षायिकभावरूपी शुद्धपर्याय परद्रव्य होने से उसके आश्रय से कभी निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होगी। **अतः क्षायिकभावादि का आश्रय नहीं करना ही क्षायिकभावादि का परिहार-त्याग कहने में आता है। ऐसा उसका अर्थ है।**

अति आसन्न भव्यजीव पुण्य-पापरूपी अटवी को जलाने में अग्निसमान है, क्योंकि उसने त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावी आत्मा की भावना से पुण्य-पापरूपी विकारी भावों का नाश कर दिया है। सहज परमपारिणामिकभाव की भावनारूप एकाग्रता से जो ध्यान प्रगट हुआ है अर्थात् निर्विकल्प वीतरागी पर्याय प्रगट हुई है, उसको निश्चय महाव्रत, समिति, गुप्ति, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित, आलोचना आदि अनेकनामों से कहा जाता है। निश्चयधर्मध्यान ही निश्चय महाव्रत, प्रायश्चितादि सब कुछ है।

❁ निश्चय महाव्रत का स्वरूप ❁

प्रश्न—निश्चय महाव्रत किसे कहते हैं और उसके कितने भेद होते हैं ?

उत्तर—त्रैकालिक अभेद ज्ञान-आनंदस्वरूपी भगवान आत्मा में श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक स्थिरता करना, उसका नाम निश्चय महाव्रत है। उसके पाँच भेद हैं। (१) निश्चय अहिंसा (२) निश्चय सत्य (३) निश्चय अचौर्य (४) निश्चय ब्रह्मचर्य (५) निश्चय अपरिग्रह।

(१) निश्चय अहिंसा महाव्रत—भगवान आत्मा अहिंसा—अकषायस्वरूप ही है, उसके आश्रय से वीतरागी अकषायभाव प्रगट होना, वह निश्चय अहिंसा महाव्रत है।

(२) निश्चय सत्य महाव्रत—ज्ञायकस्वभावी आत्मा त्रिकाल सत्यस्वरूप ही है, उसके अवलंबन से निर्विकल्प वीतरागी परिणति होना, वह निश्चय सत्य महाव्रत है।

(३) निश्चय अचौर्य महाव्रत—शुद्ध चैतन्य ध्रुव आत्मा अचौर्य स्वरूप है और परद्रव्य के ग्रहण-त्यागरहित है, ऐसे त्रैकालिक आत्मस्वरूप में श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक एकाग्रता करने पर जो निर्मल वीतरागी दशा प्रगट हुई, वह निश्चय अचौर्य महाव्रत है, क्योंकि बाह्य से निर्मल पर्याय को ग्रहण नहीं किया परंतु अंतर में से प्रगट की है।

(४) निश्चय ब्रह्मचर्य महाव्रत—ब्रह्म ऐसा ज्ञान-आनंदस्वरूप भगवान आत्मा है, उसमें रमणता करने से वीतरागी आनंद की दशा का प्रगट होना, वह निश्चय ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

(५) निश्चय अपरिग्रह महाव्रत—त्रैकालिक शुद्ध चैतन्यस्वरूप ध्रुव आत्मा स्वभाव से ही अपरिग्रहस्वरूप है। ऐसे आत्मा ने विकल्प और राग को तो पकड़ा नहीं परंतु वर्तमान पर्याय को अभी अनादि से आज तक पकड़ा नहीं है। पर्याय को त्रैकालिक आत्मा कभी आलिंगन (स्पर्श) नहीं करता, ऐसा अपरिग्रहस्वभावी भगवान आत्मा का अवलंबन करने पर निर्मल वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, उसका नाम निश्चय अपरिग्रह महाव्रत है।

❁ निश्चय समिति का स्वरूप ❁

प्रश्न—निश्चय समिति किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार की है ?

उत्तर—चिदानंद भगवान आत्मा में सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करना, वह निश्चय समिति है। उसके पाँच भेद हैं। (१)निश्चय ईर्यासमिति (२) निश्चय भाषासमिति (३) निश्चय एषणासमिति (४) निश्चय आदान-निक्षेपण समिति (५) निश्चय प्रतिष्ठापन समिति।

(१) निश्चय ईर्यासमिति—ज्ञायकस्वभावी आत्मा ईर्यासमिति स्वरूप है,

उसको देखकर शुद्ध प्रवृत्ति करना, वह निश्चय ईर्यासमिति है परंतु चार हाथ आगे की भूमिका देखकर चलने का विषय होना, वह व्यवहार ईर्यासमिति है, परमार्थ ईर्यासमिति नहीं। निश्चय ईर्यासमिति होने पर ही व्यवहार ईर्यासमिति हो सकती है।

(२) निश्चय भाषासमिति—हित-मित वचन बोलने का विकल्प होना, वह व्यवहार भाषासमिति होने से परमार्थ भाषासमिति नहीं है परंतु सत्यस्वरूप भगवान आत्मा के सन्मुख होकर सत्यरूप से निर्मल वीतरागरूप परिणमन करना, वह निश्चय भाषासमिति है।

(३) निश्चय एषणासमिति—चैतन्य आनंदघनस्वभावी आत्मा एषणास्वरूप ही है। ऐसे आत्मा की निर्मल वीतरागपरिणति द्वारा शोध करके आनंद का भोजन करना, वह निश्चय एषणासमिति है अथवा वीतरागी भावलिंगी संत निज आत्मा को शोध करके अतीन्द्रिय आनंद में ही लीन रहे और बाह्य में ऐसे शुभभाव में भी नहीं आये, वह सच्ची एषणासमिति है।

(४) निश्चय आदान-निक्षेपणसमिति—वीतराग-विज्ञानघनस्वभावी आत्मा ने अनंत गुणों को ग्रहण कर रखा है, जिसे वह छोड़ता नहीं और रागादि को कभी ग्रहण नहीं करता। ऐसे त्रैकालिक आत्मा का अवलंबन लेकर निर्विकल्प शुद्ध परिणति को ग्रहण करना और रागादि अशुद्ध परिणति को छोड़ना, वह निश्चय आदान-निक्षेपणसमिति है।

(५) प्रतिष्ठापनसमिति—चैतन्य का पूर, आनन्द का पूर, भगवान आत्मा प्रतिष्ठापन स्वरूप है। ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर लीनता करने से जो निर्मल वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, वह प्रतिष्ठापनसमिति है।

❁ गुप्ति का परमार्थस्वरूप ❁

प्रश्न—निश्चय गुप्ति किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार की है?

उत्तर—ज्ञान-आनंदस्वरूप भगवान आत्मा में गुप्त हो जाना—लीन हो जाना

वह निश्चयगुप्ति है। उसके तीन भेद हैं (१) निश्चय मनोगुप्ति (२) निश्चय वचनगुप्ति (३) निश्चय कायगुप्ति।

(१) निश्चय मनोगुप्ति—मन में परपदार्थ के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले संकल्प-विकल्पों का लक्ष्य छोड़कर अपने त्रैकालिक आत्मा में लीन हो जाना, वह निश्चय मनोगुप्ति है।

(२) निश्चय वचनगुप्ति—शुभाशुभ वचनों का लक्ष्य छोड़कर ज्ञायकस्वभावी आत्मा में गुप्त हो जाना, वह निश्चय वचनगुप्ति है।

(३) निश्चय कायगुप्ति—काया—शरीर परद्रव्य है, इसलिये उसकी ओर का लक्ष्य छोड़कर अपने निज आत्मा में लीन होकर जो निर्मल वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, वह निश्चय कायगुप्ति है।

निश्चय प्रत्याख्यान, प्रायश्चित और आलोचना का स्वरूप

निश्चय प्रत्याख्यान—शुद्ध चैतन्य की मूर्ति, ज्ञान का पुंज, आनंद का रसकंद भगवान आत्मा है, उसमें सम्यक् श्रद्धा—ज्ञानपूर्वक लीनता करने से वीतरागी चारित्रदशा प्रगट होती है, जिससे समस्त द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म का नाश हो जाता है, उसे निश्चयप्रत्याख्यान कहते हैं।

निश्चयप्रायश्चित—प्राय=प्रचुरपने, चित्त=ज्ञान, बोध। त्रैकालिक ज्ञान-आनंदस्वरूपी आत्मा के सन्मुख होकर स्थिरता करने से जो निर्मल निर्विकार दशा प्रगट होती है, वह निश्चय प्रायश्चित है।

निश्चय आलोचना—निरंजन निज परमात्मतत्त्व को निर्मल वीतरागी पर्याय द्वारा अंतर्मुख होकर देखना, वह निश्चय आलोचना-संवर है।

अखण्ड-नित्य निरावरण-सहज पमरपारिणामिकभाव स्वरूप निज आत्मा का अवलंबन-आश्रय-सन्मुखता-ध्यान से जो निश्चय वीतरागपरिणति प्रगट हुई है,

उसे निश्चयप्रायश्चित कहो, निश्चय महाव्रत कहो, निश्चयसमिति कहो, निश्चयगुप्ति कहो, निश्चयप्रत्याख्यान कहो, निश्चयप्रतिक्रमण कहो, निश्चय आलोचना कहो, निश्चय शील कहो, वे सब पर्यायें ध्यानरूप ही हैं अर्थात् परमपारिणामिकभाव का ध्यान करने से ही निश्चय महाव्रतादि पर्यायें प्रगट होती हैं।

इस गाथा की टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव ने जीव के औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिकभाव कहे हैं, उनका स्वरूप निम्नप्रकार है:—

(१) औपशमिकभाव—आत्मा का स्वसन्मुख पुरुषार्थ द्वारा अशुद्धता का प्रगट न होना अर्थात् दब जाना। आत्मा के इस भाव को औपशमिकभाव कहते हैं।

(२) क्षायिकभाव—आत्मा के स्वसन्मुख पुरुषार्थ से किसी गुण की शुद्ध अवस्था का प्रगट होना और अशुद्धता का क्षय हो जाना, सो क्षायिकभाव है और उसी समय आत्मा के पुरुषार्थ का निमित्त पाकर कर्म आवरण का नाश हो जाना, सो कर्म का क्षय है।

(३) क्षायोपशमिकभाव—आत्मा के स्वसन्मुख पुरुषार्थ का निमित्त पाकर जो कर्म का स्वयं आंशिक क्षय और आंशिक उपशम और उस समय जितना विकार रहे उतना उसके साथ कर्म का उदय हो, वह कर्म का क्षयोपशम है और जीव के भावकर्म का आंशिक क्षय और उपशम होना और जितना विकार रहे, उतना औदयिकभाव है, उसका नाम धर्म का क्षायोपशमिकभाव है।

(४) औदयिकभाव—कर्मों के निमित्त से आत्मा अपने में जो विकारभाव करता है, सो औदयिकभाव है।

(५) पारिणामिकभाव—'पारिणामिक' का अर्थ है, सहजस्वभाव, उत्पाद-व्यय रहित ध्रुव-एकरूप स्थिर रहनेवाला भाव पारिणामिकभाव है। औदयिक,

औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक—इन चार भावों से रहित जो भाव है, सो पारिणामिकभाव है।

इन पाँच भावों को दृष्टांत देकर विशेष समझाते हैं।

(१) जिसप्रकार एक काँच के गिलास में पानी और मिट्टी एकमेक दिखती है; उसीप्रकार जीव के जिस भाव के साथ कर्म के उदय का संबंध है, वह औदयिकभाव है।

(२) पानी कीचड़ सहित गिलास में कतकफल डालने से कीचड़ नीचे बैठ गया, निर्मल पानी ऊपर आ गया; उसीप्रकार कर्म के उपशम के साथ वाला जीव के भाव को औपशमिकभाव कहते हैं।

(३) कीचड़ बैठे हुए पानी के गिलास में कंकड़ डाला तो कोई-कोई मैल ऊपर आ गया, उसीप्रकार कर्म के क्षायोपशमिक के साथ वाला भाव क्षायोपशमिकभाव है।

(४) कीचड़ अलग, पानी अलग किया; उसीप्रकार कर्म के क्षय के संबंधवाला भाव क्षायिकभाव है।

(५) जिसमें कीचड़ आदि किसी भी प्रकार का संबंध नहीं है; उसीप्रकार जिसमें कर्म के उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशम की कोई भी अपेक्षा नहीं है, ऐसा अनादि-अनंत एकरूप भाव, वह पारिणामिकभाव है। श्री धवल पुस्तक ५ में लिखा है कि वस्तु भाववान होने से उसके साथ भाव होना चाहिए; इसलिये द्रव्य के भाव को पारिणामिकभाव कहते हैं और शेष चार भावों को कर्म का संबंध होने से औदयिकादिभाव कहा गया है परंतु निश्चय अपेक्षा से चार भावों को पारिणामिकभाव भी कहा गया है।

साधक जीव को द्रव्यानुसार चरण और चरणानुसार द्रव्य होता है

श्री प्रवचनसार कलश १२वें पर पूज्य स्वामीजी प्रवचन करते हुए कहते हैं कि त्रिकाल आत्मा का अनुसरण करके जो निश्चय शुद्ध चारित्रपर्याय प्रगट हुई सो द्रव्य, और उस शुद्धता के अनुरूप जो राग की मंदता-व्यवहार चारित्रपरिणति है, उसका नाम चरण है। इसप्रकार द्रव्य और चरण का परस्पर संबंध बतलाकर ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन नामक द्वितीयाधिकार की और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तृतीयाधिकार की संधि बतलायी गयी है।

द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारि
द्रव्यं मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम्।
तस्मान्मुमुक्षुरधिरोहतु मोक्षमार्गे
द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य ॥१२।

अर्थ—चरण द्रव्यानुसार होता है और द्रव्य चरणानुसार होता है। इसप्रकार वे दोनों परस्पर सापेक्ष हैं; इसलिये या तो द्रव्य का आश्रय लेकर अथवा तो चरण का आश्रय लेकर मुमुक्षु मोक्षमार्ग में आरोहण करो।

इस श्लोक में वीतरागी दिगंबर भावलिंगी आचार्य ने वीतरागमार्ग की प्रसिद्धि करके छठवें गुणस्थान में चारित्र की निश्चय शुद्ध परिणति के साथ शुभभाव की व्यवहारपरिणति की मर्यादा किसप्रकार होती है, उसका इसमें विवेक कराया गया है।

जीवद्रव्य के चारित्रगुण की (भूमिकानुसार शुद्ध के अनुरूप) मंदकषाय की व्यवहारपरिणति का नाम चरण है; जैसे पंच महाव्रतादि के विकल्पों को चरण कहा

जाता है। द्रव्यानुसार अर्थात् त्रिकाल शुद्ध आत्मद्रव्य का अनुसरण करके जो निर्मल चारित्र पर्याय प्रगट हुई, चरण उस शुद्धि के अनुसार होने से उसे शुद्धि अनुसार अर्थात् द्रव्यानुसार कहा जाता है।

जिसप्रकार केसर को टाट के थैले में नहीं रखा जाता है किंतु उसको रखने के लिये उसके प्रमाण में काँच की बोतल आदि होती है; उसीप्रकार आत्मवस्तु शुद्ध चैतन्यघन है, उसका अनुसरण करके जो निश्चय शुद्ध परिणति प्रगट हुई, उसके प्रमाण में पंचमहाव्रतादि के राग की मंदता होती है। निश्चय वीतरागपरिणति के प्रमाण में व्यवहारपरिणति होती है, उसका नाम द्रव्यानुसार चरण होता है।

पंच महाव्रतादि के राग की सहज मन्दता अनुसार—प्रमाण में आत्मद्रव्य के चारित्रगुण की परिणति में उतनी शुद्धता होना, व्यवहारपरिणति के प्रमाण में निश्चयपरिणति होना, उसका नाम चरणानुसार द्रव्य होता है। इसका अर्थ ऐसा नहीं समझना चाहिये कि राग की मंदता के व्यवहार के कारण निश्चय शुद्ध चारित्रपरिणति प्रगट हुई हो। शुद्धपरिणति तो एकमात्र निज शुद्धद्रव्य के आश्रय से ही प्रगट हुई है किंतु राग की मंदता के कारण से नहीं। शुभपरिणति के कारण शुद्धपरिणति नहीं और शुद्धपरिणति के कारण शुभपरिणति नहीं होती किंतु सब अपने-अपने कारण से होती हैं। चतुर्थ गुणस्थान में ज्ञायकस्वभावी आत्मा की निर्विकल्प श्रद्धा करने से निश्चय सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और अनंतानुबंधी कषाय के अभावरूप आंशिक स्वरूपाचरणचारित्र की पर्याय प्रगट होती है। उसके प्रमाण में राग की मंदता होती है। सम्यग्दृष्टि जीव को सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का राग होता है किंतु उन्हें कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु की श्रद्धा का राग तथा सच्चे देवादि के अविनय का भाव कभी नहीं होता। हाँ, उसे अव्रत का भाव हो सकता है।

सम्यग्दृष्टि श्रावक को पंचम गुणस्थान में अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यान इन दो कषाय के अभावरूप वीतरागपरिणति प्रगट हुई है, इसलिये इस गुणस्थान में चतुर्थ

गुणस्थान के प्रमाण का राग कभी नहीं होता, किंतु इस गुणस्थान की भूमिकानुसार एक देशव्रतादि का तथा दया-दानादि का शुभराग होता है। यदि उसे रौद्रध्यान-आर्तध्यान होवे तो वह दो कषाय के अभावरूप का होगा।

छठवें गुणस्थान में त्रिकाल ज्ञान-आनंदस्वभावी भगवान आत्मा का आश्रय करने पर अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान इन तीन कषाय के अभावरूप शुद्ध परिणति प्रगट होने से उसके प्रमाण में राग की मंदता होती है। जैसे—देव-शास्त्र-गुरु को वंदन करने का, पंच महाव्रतादि का निरतिचार पालन करने का शुभ विकल्प हो किंतु वस्त्रादि लेने का, त्रस-स्थावर की हिंसा करने का तथा उद्देशिक आहार लेने का विकल्प नहीं होता है; अव्रत का भी विकल्प नहीं होता किंतु व्रत का विकल्प राग की मंदता सहित होता है। इस गुणस्थान में रौद्रध्यान नहीं होता परंतु आर्तध्यान भूमिकानुसार किसी समय मंदरूप होता है। सातवें गुणस्थान से छठवें गुणस्थान की स्थिति दूनी होती है।

छठवें गुणस्थान में निद्रा का काल उसकी भूमिकानुसार अल्प होता है किंतु अधिक नहीं होता। इस गुणस्थान में तीन कषाय के अभावरूप जो शुद्धपरिणति प्रगट हुई है, उसके प्रमाण में ही रागरूप व्यवहार होता है किंतु यदि कोई वस्त्रादि लेने का राग करे और उस सवस्त्र स्थिति में अपने को मुनिपना मान ले तो उसे सात तत्त्वों में से आस्रव बंध तथा संवर-निर्जरा और उसके फलरूप मोक्षतत्त्व का भी सच्च ज्ञान-श्रद्धान नहीं है। संवर-निर्जरारूप जो शुद्धपरिणति प्रगट हुई है, उसके प्रमाण में ही आस्रव परिणति होती है, यदि उससे अधिक आस्रव परिणति हो तो समझना चाहिये कि उसे शुद्धपरिणति तथा अशुद्धपरिणति का सच्चा ज्ञान नहीं है। जीवादि सात तत्त्वों के स्वरूप का सच्चा ज्ञान नहीं होने से उसे उनके स्वरूप के विषय में बहुत बड़ी भ्रमणा है, इसलिये वह सम्यग्दृष्टि जीव नहीं है।

धर्मात्मा ज्ञानी जीवों को जितनी कषाय के अभावरूप निश्चय शुद्धि होती है,

उतने ही प्रमाण में व्यवहार—अशुद्धि—राग की मंदता सहज होती है और जितनी अशुद्धि—राग की मंदता सहज होती है, उतने प्रमाण में शुद्धि होती है। इसप्रकार शुद्धि और अशुद्धि दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। शुद्धि और अशुद्धि को परस्पर सापेक्ष बताने के लिये मूल श्लोक में 'मिथो' शब्द का उपयोग किया है।

अब, आचार्यभगवान धर्मी जीवों को उपदेश ही नहीं किंतु आदेश देते हैं कि—त्रिकाल वीतराग ज्ञानघन चैतन्यस्वभावी आत्मद्रव्य का अनुसरण करके जो शुद्धपरिणति प्रगट हुई है, उसका आश्रय अर्थात् ज्ञान-लक्ष करके उसमें वृद्धि करो अथवा राग की मंदता है, पंच महाव्रतादि का विकल्प है, उस चरण का आश्रय अर्थात् ज्ञान-लक्ष करके मुमुक्षुजीव उसके अभाव का पुरुषार्थ करें।

कलश के अर्थ में 'द्रव्य का आश्रय लेकर' अथवा तो 'चरण का आश्रय लेकर' ऐसे शब्द हैं, उनका अर्थ ऐसा समझना चाहिये कि 'द्रव्य का आश्रय लेकर' अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकस्वभावी आत्मा का अनुसरण करके जो निश्चय शुद्ध परिणति प्रगट हुई है, उस शुद्धि का आश्रय माने उसका ज्ञान करके उसमें विशेष वृद्धि करो। 'चरण का आश्रय लेकर' अर्थात् छठवें गुणस्थान में शुद्धि के अनुरूप पंच महाव्रतादि के सहज विकल्परूप जो व्यवहारचरण है, उसका ज्ञान करके धर्मी जीव उसके अभाव का पुरुषार्थ करें। चरण-शुभभाव का उपादेयबुद्धि से आश्रय करो और उस आश्रय से धर्म होगा, यह उसका अर्थ नहीं है।

मुमुक्षु : मोक्ष के अभिलाषी जीव को मुमुक्षु कहते हैं। ज्ञानी एवं मुनि मुमुक्षु जीव हैं। जिसप्रकार पर्वत पर ऊपर-ऊपर चढ़ा जाता है, उसीप्रकार आत्मा की शुद्धि में क्रम-क्रम से वृद्धि करने का नाम मोक्षमार्ग में आरोहण करना है।

वीतरागी भावलिंगी संत कहते हैं कि मुझे अपने त्रैकालिक आत्मा का ही अवलंबन है।

ममतिं परिवज्जामि णिम्ममतितमुवट्ठिदो।
आलंबणं च मे आदा अवसेसं च वोसरे॥

मैं त्याग ममता, निर्ममत्व स्वरूप में स्थिति कर रहा।
अवलंबन मेरा आतमा अवशेष वारण कर रहा॥ (नियमसार, गाथा ९९)

इस गाथा पर पूज्य स्वामीजी प्रवचन करते हुए कहते हैं कि यहाँ पर समस्त पुण्य-पापरूपी विभाव के त्याग की विधि कही है।

वीतरागी भावलिंगी संत अपनी बात करते हुए कहते हैं कि सुंदर स्त्री, धन, सोना-चाँदी आदि समस्त परद्रव्य-गुण-पर्यायें मेरे हैं, ऐसी मान्यता को मैं आत्मा का अवलंबन लेकर छोड़ देता हूँ। अब त्रैकालिक आत्मा का स्वभाव कैसा है, सो कहते हैं—

परम उपेक्षा लक्षण से लक्षित निर्ममत्वमय त्रैकालिक आत्मा है। ऐसे आत्मद्रव्य की प्राप्ति करने के लिये किसी परपदार्थ और विकल्प की अपेक्षा नहीं है। इसलिये आत्मा को परम उपेक्षित कहा। त्रैकालिक आत्मा निर्ममत्वमय है क्योंकि वह किसी भी परपदार्थ की ममता के भाव से रहित है। ऐसे निर्ममत्वमय स्वभावी आत्मा का अनुभव करने पर जो निर्मलदशा प्रगट हुई है, उसके द्वारा वह आत्मा में स्थिर होता है, जिससे उन्हें निश्चय प्रत्याख्यानरूप पर्याय प्रगट होती है। परपदार्थ के आश्रय से मलिन पर्याय उत्पन्न होती है, उसे छोड़कर स्व के आश्रय से जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई है, उससे वह अपने निज आत्मा में लीन होता है। जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई है, उसका अवलंबन शुद्ध चैतन्य आत्मा है परंतु निर्मल पर्याय का अवलंबन परपदार्थ, राग तो नहीं है किंतु निर्मल पर्याय भी नहीं है।

चैतन्य ज्ञान-आनंदस्वभावी भगवान आत्मा की सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान न करके शुभ-अशुभभावों को अपना मानना, वह संसार है। शुभ-अशुभरूपी परिणति के साथ एकता करने से सुख-दुःखादि की विभावपरिणति उत्पन्न होती है, उसको मैं शुद्ध चैतन्य आत्मा का आश्रय करके छोड़ देता हूँ। इसका नाम निश्चयप्रत्याख्यान है। जब मैं अपनी निर्मलपरिणति के द्वारा त्रैकालिक आत्मा में स्थिर होता हूँ, तब शुभाशुभरूप विभाव परिणति उत्पन्न नहीं होती है, तो ऐसा कहा जाता है कि मैंने उसे छोड़ दिया है।

आत्मा को शुद्ध आत्मा ही ध्रुव है, अन्य किंचित् मात्र ध्रुव नहीं

भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रवचनसार की गाथा १९२ द्वारा 'ध्रुवपने के कारण शुद्ध आत्मा ही उपलब्ध करनेयोग्य' इसप्रकार भव्य जीवों को समझाते हुए कहते हैं कि —हे जगत के जीवो! परद्रव्य से भिन्नपना और स्वधर्म से अभिन्नपना होने के कारण जिसे एकपना वर्त रहा है और एकपने के कारण जो शुद्ध है, ऐसे अनादि अनंत, स्वत:सिद्ध शुद्ध आत्मा को ही तुम प्राप्त करो। शुद्ध आत्मा ही ध्रुव है—ऐसे आत्मा की प्राप्ति करने से तुम्हारी परिणति में भी शुद्धता धारावाही बहती रहेगी।

पर्यूषण पर्व के महान दिनों में इस गाथा पर पूज्य स्वामीजी ने प्रवचन किया था। यह गाथा तो अलौकिक है किन्तु उसकी टीका भी गंभीर और अद्भुत है। यहाँ स्वधर्म से अभिन्न और पर से भिन्न, ऐसा एकपना आत्मा को कहा है। एक है, वह शुद्ध है और शुद्ध है, वह ध्रुव है। सत् और स्वत:सिद्ध भगवान आत्मा अपने कारण ही अपनी विद्यमानता रखता है, किसी परद्रव्य, रागादि और ईश्वर से उसका विद्यमानपना स्थिर है—ऐसा नहीं है। सत् और स्वत:सिद्ध ऐसे आत्मा का अन्य से विद्यमानपना कैसे हो? परद्रव्य से तो विद्यमानपना नहीं परंतु उत्पाद-व्यय होने से विद्यमानपना है, ऐसा भी नहीं। ध्रुव भगवान आत्मा मैं हूँ—ऐसा उत्पादरूप पर्याय में ज्ञान हुआ, उस ज्ञान की पर्याय से स्वयं अभिन्न है और पर से भिन्न है। स्व का ज्ञान जिस पर्याय द्वारा हुआ, उस ज्ञान की पर्याय से स्वतत्त्व अभिन्न है और पर से भिन्न है, इसलिये आत्मा को एकपना है। मैं एक हूँ, मैं एक हूँ—ऐसा विकल्परूप नहीं। आत्मा को ऐसा एकपना होने के कारण वह शुद्ध है, इसलिये वही ध्रुव है, अन्य किंचित्मात्र भी ध्रुव नहीं है। यहाँ पर परद्रव्य मुझे ध्रुव नहीं, ऐसा बतलाना है, क्योंकि पर्याय ने तो ध्रुव-शुद्ध का अनुभव

किया है... ध्रुव हूँ—ऐसा ज्ञान पर से भिन्न होकर आत्मसन्मुख होने से हुआ है, इसलिये परवस्तु वह अध्रुव और मैं ध्रुव, ऐसे ज्ञान की पर्यायसहित एकपनारूप शुद्ध वह ध्रुव है।

❁ आत्मा शुद्ध कैसे है ❁

आत्मा शुद्ध अर्थात् परद्रव्य से विभाग और स्वधर्म से अविभाग होने से एकपना है और एकपना है, इसलिये वह शुद्ध है। दोपना हो, तो अशुद्ध हो जाये... परद्रव्य से अविभाग और स्वधर्म से भी अविभाग—ऐसा दोपना हो, तो अशुद्ध हो जाये... शरीर, वाणी, कर्म, देव-गुरु-शास्त्रादि परपदार्थ से भिन्न तथा पर को जानती हुई पर्याय तथा ध्रुव को जानती हुई पर्याय, उससे अभिन्न होने से एकपना है; इसलिये वह शुद्ध है।

स्वधर्म से अविभाग तथा परपदार्थ से भिन्नपने का ज्ञान और स्व-पर का ज्ञान—ऐसी जो अपने से हुई ज्ञान की स्व-परप्रकाशक परिणति, उससे अविभाग है; तथा परपदार्थ से विभाग है; ऐसा जिसकी पर्याय ने अनुभव किया है, वह आत्मा शुद्ध है... मात्र शुद्ध है—शुद्ध है—ऐसा विकल्प नहीं, परंतु शुद्ध परिणमन सहित हो वह शुद्ध है।

❁ अब एकपना कैसे है? ❁

(१) ज्ञानात्मकपने के कारण, (२) दर्शनभूतपने के कारण, (३) अतीन्द्रिय महापदार्थ के कारण, (४) अचलपने के कारण तथा (५) निरालंबपने के कारण आत्मा को एकपना है।

भगवान आत्मा ने अपने को ज्ञानस्वरूप ही धारण कर रखा है। त्रैकालिक ज्ञानात्मक वह मैं, ऐसा पर्याय में अनुभव हुआ है, उस पर्याय सहित के ज्ञानात्मक को आत्मा धारण करता है। त्रैकालिक ज्ञान धारण करनेवाले आत्मा वह मैं—ऐसा पर्याय में अनुभव हुआ है, इसलिये उस पर्याय सहित के ज्ञानात्मक को आत्मा ने धारण किया है... ज्ञानात्मक त्रिकाल हूँ, एक हूँ, पर से भिन्न हूँ, एकपने के कारण शुद्ध हूँ और शुद्ध के कारण ध्रुव हूँ—ऐसा जिस ज्ञान की पर्याय ने स्वीकार किया है, उस पर्याय सहित अभिन्न हूँ; मैं ध्रुव हूँ, मैं ध्रुव हूँ—ऐसा विकल्प नहीं, परंतु पर्याय में ऐसा स्वीकार आया हो, उसे ध्रुव है...

अहो! बहुत सरस गाथा है। वर्तमान ज्ञानपर्याय में स्वीकार किये बिना शुद्ध हूँ—शुद्ध हूँ, ध्रुव हूँ, ध्रुव हूँ—ऐसा नहीं... ध्रुव को जाना किसने? ध्रुव ने? स्वीकार किया किसने? ध्रुव ने? नहीं... ध्रुव हूँ—ऐसा स्वीकार करनेवाली तो पर्याय ही है... यहाँ तो पर से भिन्न और स्वधर्म से अभिन्न की बात है। इसलिये पर्याय सहित की यहाँ पर बात है... परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि ध्येय-लक्ष भी पर्याय सहित के ध्रुव का हो। ध्येय (आश्रय) तो त्रिकाली ध्रुव का ही हो, परंतु उसका स्वीकार करनेवाली पर्याय है... इसप्रकार जिस पर्याय ने त्रिकाली ध्रुव को ध्येय बनाकर उसका स्वीकार किया है, उसी पर्याय सहित अभिन्न हूँ और पर से भिन्न हूँ... उसकी यह बात है।

अब एकपना होने के लिये पूर्व में जो पाँच बोल कहे थे, उनका स्पष्टीकरण आचार्यदेव करते हैं—(१-२) त्रैकालिक ज्ञान हूँ, ऐसा ज्ञान को धारण कर रखा है तथा दर्शनभूत—त्रिकाल दर्शन धारण कर रखनेवाला ऐसा आत्मा, वह मैं हूँ ऐसा पर्याय में अनुभव हुआ है, उस पर्याय से अविभाग और ज्ञानदर्शन से रहित तथा सहित ऐसे सब पदार्थों से विभाग होने के कारण एकपना है। (३) अपने-अपने नियत विषय को अर्थात् स्पर्श-रस-गंध-वर्णरूप गुण और शब्दरूप पर्याय को ग्रहण करनेवाली अनेक इन्द्रियाँ, उसे अतिक्रम-छोड़कर-उल्लंघन करके, समस्त स्पर्श-रस-गंध-वर्ण-गुण तथा शब्दरूप पर्याय को जाननेवाला अतीन्द्रिय महापदार्थ आत्मा होने से उसे इन्द्रियात्मक परद्रव्य से विभाग है तथा स्पर्शादि के ज्ञानस्वरूप स्वधर्म से अविभाग है। इसलिये आत्मा को एकपना है। (४) समय-समय नाश होनेवाली ज्ञात होनेयोग्य—ज्ञेयपर्यायों को ग्रहण-त्याग का अभाव होने से आत्मा अचल है; इसलिये ज्ञेयपर्यायोंस्वरूप परद्रव्य से विभाग है और वे ज्ञेयपर्यायें जिनका निमित्त है, ऐसा ज्ञानस्वरूप स्वधर्म से अविभाग है, इसलिये एकपना है। (५) शाश्वत ज्ञेय परद्रव्यों के आलंबन का आत्मा को अभाव होने से निरालंबन है; इसलिये आत्मा को ज्ञेय परद्रव्यों से विभाग है, और वे ज्ञेय परद्रव्य जिनका निमित्त है, ऐसे ज्ञानस्वरूप स्वधर्मों से अविभाग है, इसलिये एकपना है।

अहा! एकपना बतलाने के लिये आचार्यदेव ने पाँच बोल लिये, उसमें सब ओर से पर से भिन्नपना और स्व से अभिन्नपना आ गया।

श्री जयसेनाचार्य ने इस गाथा में ध्रुव का अर्थ टंकोत्कीर्ण, ज्ञायकस्वभाव, वह ध्रुव ऐसा कहा है। मूल तो ध्रुव त्रिकाली बतलाना है... पर तरफ का लक्ष छोड़कर त्रिकाल शुद्ध द्रव्य की सेवा-उपासना-लक्ष करने से पर्याय में शुद्धता प्रगट हुई, तब 'मैं यह शुद्धात्मा हूँ' ऐसा ज्ञान हुआ... पर से भिन्नपना और पर्याय से अभिन्नपने के कारण आत्मा को एकपना है, एकपने के कारण शुद्ध है और शुद्ध के कारण ध्रुव है। मूल तो ध्रुव त्रिकाली बतलाना है, परंतु ध्रुव का अनुभव किये बिना ध्रुव कहाँ से प्राप्त हो? ध्रुव का अनुभव जिसकी पर्याय में नहीं हुआ, उसे ध्रुव कहाँ से प्राप्त हो?... ध्रुव की अस्ति तो जगत में है परंतु पर्याय में अस्ति का स्वीकार किये बिना ध्रुव की अस्ति कहाँ से आ सकती है। श्री समयसार की छठवीं गाथा में भी कहा है कि परद्रव्य और परभाव का लक्ष छोड़कर त्रैकालिक आत्मद्रव्य पर लक्ष्य गया, तब शुद्ध परिणमन हुआ—उसे यह शुद्ध है। जिसको परिणमन में नहीं आया, उसे शुद्ध ध्रुव-टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभाव कहाँ से आयेगा?... जिसको पर्याय में ऐसा ज्ञायकभाव बैठा, उसे यह आत्मा एक ही ध्रुव है और अन्य समस्त अध्रुव है, ऐसा अनुभव हुआ है।

इसमें पुनर्शक्ति दोष घटित नहीं होता क्योंकि अनादि के विपरीत संस्कारों का पोषण किया है... इसलिये वही की वही बात बारंबार अनेक अपेक्षा से समझाने की आचार्यदेव ने करुणा की है। देखिये! पर से भिन्न और स्व से अभिन्न समझाने के लिये पाँच-पाँच बोल से कितना स्पष्टीकरण किया है।

जब अपने आत्मा का ज्ञान हुआ, तब पर संबंधी ज्ञान भी उसमें आ गया; ऐसी स्व-परप्रकाशक ज्ञान की जो पर्याय हुई, उससे आत्मा अभिन्न है और उस परद्रव्य से आत्मा भिन्न है। विकल्प उत्पन्न हुआ, उसका ज्ञान हुआ; वहाँ विकल्प के कारण ज्ञान नहीं हुआ, ज्ञान तो अपने ज्ञातास्वभाव के कारण हुआ है। उस ज्ञान से आत्मा अभिन्न है और विकल्प से भिन्न है। साक्षात् भगवान और उनकी दिव्यध्वनि का उपदेश तो इंद्रियों

का विषय है, उससे अतीन्द्रिय महापदार्थ का ज्ञान नहीं होता, परंतु अपने अतीन्द्रिय ज्ञानसामर्थ्य से उसका ज्ञान होता है; उस ज्ञानपर्याय से आत्मा अविभाग है और इंद्रिय के विषय से विभाग है।

ऐसा एकपना आत्मा का होने से वह शुद्ध है और शुद्ध होने से आत्मा ध्रुव है, अत: हे भव्य जीवों! ऐसे शुद्धात्म को तुम उपलब्ध करो—इसप्रकार इस गाथा में आचार्यदेव ने समझाया है।

— भजन —

साँची तो गंगा यह वीतरागी वानी,
अविच्छन धारा निज धर्म की कहानी ॥साँची॥ टेक॥
जामें अति ही विमल अगाध ज्ञान पानी,
जहाँ नहीं संशयादि पंक की निशानी ॥साँची॥१॥
सप्तभंग जहँ तरंग उछलत सुखदानी,
संत चित मरालवृंद रमैं नित्य ज्ञानी ॥साँची॥२॥
जाके अवगाहनतैं शुद्ध होय प्रानी,
'भागचंद' निहचै घटमाहिं या प्रमानी ॥साँची॥३॥

परीक्षा ११, १२ व १३ फरवरी १९७६ को होगी

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड द्वारा ली जानेवाली शीतकालीन परीक्षायें दिनांक ११, १२ व १३ फरवरी १९७६ क्रमश: बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार को होगी। केन्द्राध्यक्ष ध्यान दें।

परीक्षा का विस्तृत कार्यक्रम, रोल नम्बर तथा अन्य आवश्यक सामग्री केन्द्रों को भेजी जा चुकी है। जो संस्थाएँ अभी तक फॉर्म भरकर नहीं भेज सके हैं, वे १०-१२-७५ तक भेज सकते हैं।

मंत्री, परीक्षा बोर्ड

सहज अनंत चतुष्टयस्वरूप भगवान आत्मा

जिसने स्वसंवेदनपूर्वक जान लिया उसने सब कुछ जान लिया, देख लिया और सुन लिया है।

श्री नियमसार के निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार की ९६वीं गाथा के कलश पर पूज्य स्वामीजी मार्मिक प्रवचन करते हुए कहते हैं कि ज्ञानी-धर्मात्मा जीव ऐसी भावना करते हैं मैं सहज स्वाभाविक त्रैकालिक ज्ञानस्वरूप हूँ, सहज दर्शनस्वरूप हूँ, सहज चारित्रस्वरूप हूँ तथा सहज सुखस्वरूप हूँ। ऐसे सहज स्वरूप आत्मा की स्वसन्मुख भावना एकाग्रता करने से शुद्ध निश्चयचारित्र प्रगट होता है। जिसे निश्चयप्रत्याख्यानरूप धर्म भी कहा जाता है। जिन जीवों को ज्ञानी बनना हो, वे उपरोक्त विधि की श्रद्धा करें।

मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव ने अपने कथन के आधाररूप में पद्मनंदी आचार्यवर कृत पद्मनंदी पंचविंशति के एकत्व-सप्तति नाम के अधिकार का २०वाँ श्लोक दिया है, उसका भावार्थ निम्न प्रकार है—

केवलज्ञानदृक्सौख्यस्वभावं तत्परं महः।
तत्र ज्ञाते न किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम्॥

श्लोकार्थ—परम तेज केवलज्ञान, केवलदर्शन और केवलसुखस्वभावी है। उसे जानते हुए क्या नहीं जाना? उसे देखते हुए क्या नहीं देखा? उसका श्रवण करते हुए क्या नहीं सुना?

सर्व प्रथम श्लोक में यह बात बतलाते हैं कि त्रिकाल भगवान आत्मा का स्वरूप कैसा है?

त्रिकाल आत्मा परम तेज (उत्कृष्ट प्रकाशमान) केवलज्ञान, केवलदर्शन और

केवल सुखस्वभावी है। इसके अतिरिक्त भी ऐसे अनंत स्वरूप को धारण करनेवाला भगवान आत्मा है। त्रिकाल आत्मा केवल अर्थात् मात्र ज्ञानस्वरूप होने से उसमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा को जिसने निर्विकार स्वसंवेदन पूर्वक जान लिया, उसने क्या नहीं जाना अर्थात् उसने सब कुछ जान लिया है। उसको द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग और प्रथमानुयोग इन सबका सच्चा ज्ञान हो गया क्योंकि चारों अनुयोगों का सार तो एक त्रिकाल आत्मा के सन्मुख होकर उसे जानने का था, वह जान लिया है, इस कारण उसे चारों अनुयोगों का ज्ञान यथार्थ हो गया है। प्रथम त्रिकाल आत्मा को स्वसंवेदनपूर्वक जाने बिना किसी भी जीव को सम्यक्ज्ञान नहीं होता। प्रथम प्रथमानुयोग पढ़ना चाहिये, फिर चरणानुयोग पढ़ना चाहिये—यह सब बातें नियमरूप नहीं हैं क्योंकि आत्मा को जाने बिना जीव को सच्चा आचरण कहाँ से होगा? जिसने ज्ञानस्वरूप आत्मा का ज्ञान कर लिया है परंतु अभी उसे परिपूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हो पायी है तो उसे भूमिकानुसार रागादि आ जाते हैं तो वह उनका स्वामित्वभाव से करनेवाला नहीं रहता है, मात्र जाननेवाला रहता है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति का शुभराग उसे आ जाता है तो वह उसका मात्र जाननेवाला है। जिस जीव ने त्रिकाल ज्ञानस्वरूप आत्मा को जान लिया है, उसने क्या नहीं जाना—जो जाननेयोग्य था, वह सब कुछ जान लिया है। जिसने जाननेवालो को जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया है। श्री जयेसनाचार्य ने भी समयसार में कहा है कि जिसने एक भाव को सच्चा जान लिया है, उसने सब भावों को सच्चा जान लिया है।

त्रिकाल आत्मा का स्वरूप और कैसा है? त्रिकाल आत्मा केवलदर्शनस्वभावी है। ऐसे केवलदर्शनस्वभावी आत्मा को देखने पर उसने क्या नहीं देखा अर्थात् उसने सब कुछ देख लिया है। जबकि इसने श्री सम्मेदशिखरजी आदि तीर्थक्षेत्रों को कहाँ देख लिया है? त्रिकाल आत्मा को देख लिया तो उसे तीर्थक्षेत्रों के देखने का विकल्प आ जाये किंतु उसका भी वह जाननेवाला है, कर्ता नहीं है। भगवान आत्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुखस्वभावी है; ऐसे त्रिकाल आत्मा को जिसने अंतर्मुख होकर

सुना है, उसने क्या नहीं सुना है अर्थात् उसने सब कुछ सुन लिया है। केवलज्ञान-स्वभावी आत्मा के एक समय की शुद्ध केवलज्ञानपर्याय की इतनी शक्ति है कि वह जगत के समस्त द्रव्यों के द्रव्य-गुण-पर्याय और सप्तभंगी को एक समय में युगपद जान लेवें, ऐसी अनंत-अनंत शक्तियों को धारण करनेवाला भगवान आत्मा है, उसको जिसने सुना है, उसने क्या नहीं सुना? उसने सब कुछ सुन लिया है। वाणी सुनी किंतु वास्तव में उसका अर्थ यह है कि उसने त्रिकाल आत्मा को सुना है क्योंकि उसने अपनी वर्तमान ज्ञान की पर्याय में भगवान आत्मा को लिया होने से आत्मा को ही सुना है।

केवलज्ञान-दर्शन-सुख और वीर्य ऐसा सहज अनंत चतुष्टयस्वरूप भगवान आत्मा को जिसने जान लिया है, उसने सबको जान लिया है, उस आत्मा को जिसने देख लिया है, उसने सबको देख लिया है, उस आत्मा को जिसने सुना है, उसने सब कुछ सुन लिया है। यही बारह अंग का सार है।

जो जीव त्रिकाल ज्ञान-दर्शन-सुख और वीर्यस्वरूप आत्मा की अंतर से महिमा नहीं करते उन्हें जीवन में पर, राग और पर्याय की महिमा अंतर में से कभी नहीं जायेगी। जिसने भगवान आत्मा को जाना नहीं, देखा नहीं और सुना नहीं, उसने जीवन में कुछ भी नहीं जाना, कुछ भी नहीं देखा और कुछ भी नहीं सुना है।

जिसप्रकार वृक्ष के मूल में पानी देने से वृक्ष बढ़ता और फल भी देता है, परंतु वृक्ष के मूल में पानी न देकर मात्र शाखा और पत्तों को पानी देने से वृक्ष बढ़ता नहीं और फल भी नहीं देता; उसीप्रकार केवलज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा मूल है, उसका अनुभव किये बिना मात्र ऊपर-ऊपर दया-दानादि की शुभ क्रियायें करता रहे तो उससे अतीन्द्रिय आनंदरूपी फल की प्राप्ति नहीं होगी।

यह महा मांगलिक कलश है। वीतरागी दिगंबर संतों ने आत्मा के अंतर्मुख होकर जो प्राप्त किया था, उसको प्राप्त करने की बात भव्यजीवों को इस कलश में कही गयी है। ❀

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यरूपी तेज का पुंज है उसकी प्राप्ति के उपाय का अद्भुत वर्णन

श्री प्रवचनसार में भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने २७५ गाथायें लिखी हैं, उन पर टीकाकार श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने 'परिशिष्ट' लिखकर जीवों पर महान उपकार किया है। जिसप्रकार जिन-मंदिर पर कलश चढ़ाया जाता है, उसीप्रकार इस 'परिशिष्ट' में ४७ नयों द्वारा 'आत्मा कैसा है ? और वह पर्याय में किसप्रकार प्राप्त किया जा सकता है ?' उसका वर्णन करके आचार्यदेव ने प्रवचनसार पर कलश चढ़ाया है। वर्तमान काल में पूज्य स्वामीजी ने परिशिष्ट में आये हुए ४७ नयों पर विशिष्ट अपूर्व मार्मिक प्रवचन करके ४७ नयरूपी जिन-मंदिर पर ध्वजा लहरायी है।

* शिष्य की जिज्ञासा और आचार्यदेव की करुणा *

यह आत्मा कैसा है और कैसे प्राप्त किया जाता है, ऐसा प्रश्न किया जाये तो इसका उत्तर पूर्व में कहा जा चुका है, फिर भी यहाँ शिष्य की विशेष जिज्ञासा को पूर्ण करने के लिये श्री आचार्यदेव ने इस परिशिष्ट में पुनः उस बात को विशेषरूप से समझाया है।

शिष्य को आत्मा ही समझने की जिज्ञासा होने से उसने अन्य कोई प्रश्न न करके एक मात्र आत्मा का ही प्रश्न पूछा है कि हे प्रभो! यह आत्मा कैसा है और पर्याय में उसकी किसप्रकार प्राप्ति हो ? पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक और कर्म की बात नहीं पूछी, परंतु आत्मा की ही बात पूछी; अन्य सबका जानपना तो इस जीव ने अनंत बार कर लिया है परंतु अपना त्रैकालिक आत्मा कैसा है, वह पूर्व में कभी सम्यक्रूप से नहीं

जाना था। अतः मैं उसी को समझना चाहता हूँ। ऐसे शिष्य को आचार्यदेव फिर से आत्मा का स्वरूप बतलाते हैं। पहले ज्ञान अधिकार, ज्ञेय अधिकार और चरणानुयोगसूचिका चूलिका में जो वर्णन किया है, उसमें आत्मा कैसा है और उसकी किसप्रकार प्राप्ति हो, यह दोनों बातें आ तो जाती हैं परंतु यहाँ पुनः अन्य रीति से आचार्यदेव उस बात को करुणापूर्वक बतलाते हैं।

*** अनंत नयात्मक श्रुतप्रमाणपूर्वक स्वानुभव से ही आत्मा प्रमेय होता है। ***

"प्रथम तो आत्मा वास्तव में चैतन्यसामान्य से व्याप्त अनंत धर्मों का अधिष्ठाता (स्वामी) एक द्रव्य है, क्योंकि अनंत धर्मों में व्याप्त होनेवाले जो अनंत नय हैं, उनमें व्याप्त होनेवाला जो एक श्रुतज्ञानस्वरूप प्रमाण है, उस प्रमाणपूर्वक स्वानुभव से (वह आत्मद्रव्य) प्रमेय होता है (ज्ञात होता है)।"

दर्शनप्रधान से (सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की मुख्यता से) श्रद्धा का विषय शुद्ध चैतन्य आत्मा, सामान्य, एकरूप, अभेदस्वभाव है। परंतु ज्ञानप्रधान में आत्मा को सर्व ओर से जानना चाहिये क्योंकि उसका ज्ञान किये बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता, इसलिये ज्ञानप्रधान से आत्मा किसप्रकार है, वह बतलाते हैं—

प्रत्येक जीवद्रव्य भगवान आत्मा है और उसमें त्रिकाली गुणों, विकार-निर्विकार पर्यायें और अस्तित्वादि अपेक्षित अनंत धर्म है। एक-एक आत्मा अनंत धर्म का अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है। अनंत धर्म चैतन्य सामान्य से व्याप्त हैं, उन अनंत धर्मों को रहने का स्थान आत्मा के लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेश है। प्रत्येक आत्मा अनंत धर्मों का आधाररूप एक द्रव्य है क्योंकि अनंत धर्मों को जाननेवाले जो अनंत नय है, उसमें व्यापनेवाला एक सम्यक् श्रुतज्ञानप्रमाणपूर्वक स्वानुभव से आत्मा जानने में आता है।

एक आत्मपदार्थ में अनंत धर्म हैं और उसे जाननेवाले श्रुतप्रमाण में अनंत नय हैं। एक-एक धर्म को जाननेवाला एक-एक नय, इसप्रकार अनंत धर्म को जाननेवाले

अनंत नय है, जिसप्रकार अनंत धर्मों का एक आत्मद्रव्य में समावेश हो जाता है, उसीप्रकार अनंत नयों का एक श्रुतज्ञानप्रमाण में समावेश हो जाता है। जिसप्रकार अपने अनंत धर्मों में एक आत्मद्रव्य व्याप्त है, उसीप्रकार उन धर्मों को जाननेवाले अनंत नयों में श्रुतज्ञानप्रमाण व्याप्त है। उस श्रुतज्ञानप्रमाण से अनंत धर्मों का आधार भगवान आत्मा जानने में आ जाता है अर्थात् उसके स्वसन्मुख होने पर श्रुतज्ञानप्रमाण से सारा आत्मा स्वानुभव में आ जाता है।

श्री प्रवचनसार के कलश १९ में कहा है कि ४७ नयों द्वारा भगवान आत्मा का अनेक प्रकार से स्वरूप जानकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करने के लिये एकमात्र शुद्ध चैतन्य आत्मा का आश्रय करके उसका अनुभव करना, यही नयों को जानने का प्रयोजन है। **एक-एक नय से एक-एक धर्म का ज्ञान होता है, ऐसा ज्ञान करके अनंत धर्मवाले निज आत्मद्रव्य को अंतर में शुद्ध चैतन्यमात्र देखना चाहिये और सम्यक् श्रुतज्ञान प्रमाण से सारे धर्मों का एक साथ ज्ञान होता है, ऐसा ज्ञान करके अनंत धर्मवाले निज आत्मद्रव्य को अंतर में शुद्धचैतन्यमात्र देखना ही नयों का ज्ञान कराने का प्रयोजन है।**

अपने शुद्ध चैतन्यसामान्यस्वभाव के साथ मैत्री करनेयोग्य है— अन्य पदार्थों से नहीं

शिष्य ने पूछा था कि आत्मा कैसा है कि जिसका स्वसंवेदन-अनुभव किये बिना धर्म नहीं होता? आत्मा कैसा है, वह ४७ नयों के द्वारा कहा जा चुका है। अब शांति-मोक्षमार्ग किसप्रकार प्रगट हो और उसका साधन-उपाय क्या है? उसका उत्तर देते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि—

अनादिकाल से अज्ञानी जीव अपने शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा को भूलकर परपदार्थ, पुण्य-पाप और पर्याय जो कि ज्ञेय है - ज्ञान में जाननेयोग्य है, उनको लाभ का कारण मानकर उनके साथ मैत्री करता है और ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा की मैत्री-

रुचि-प्रीति नहीं करता। यह इसका महान दोष है। इस दोष के कारण यह जीव चार गति में परिभ्रमण करता है।

वीतराग विघानघनस्वभावी भगवान आत्मा की दृष्टि न करके शरीर, पैसा, शुभाशुभभाव और पर्याय की दृष्टि करके मिथ्यात्व-राग-द्वेष का अनुभव अनादि से कर रहा है, जिसमें मोहनीय कर्म का निमित्तपना है। वास्तव में स्वयं ही अपने विपरीत पुरुषार्थ से मोहादिभावरूप परिणमन करता है, तब मोहकर्म को निमित कहने में आता है। स्व-पर के एकपने की मान्यता होने से आत्मपरिणति निरंतर चक्कर खाती है—भिन्न-भिन्नरूप से विकारपने परिणमन करती है। जिसप्रकार समुद्र में तूफान आने पर अनेक प्रकार की तरंगें उठती हैं, उसीप्रकार आत्मा की परिणति में मोह-राग-द्वेषरूपी अनेक तरंगें उठने से आत्मा पर्याय में क्षुब्ध-दुःखी होता है।

अज्ञानी जीव ज्ञेयों के साथ मैत्री करके मोह-राग-द्वेषरूप परिणमन करके संसार में घूमता है

त्रैकालिक आत्मा ज्ञानस्वरूप है। जानना-देखना उसका त्रैकालिकस्वभाव है। उस स्वभाव का अनुभव न करके जो ज्ञान की अनेक प्रकार की भिन्न-भिन्न जानने की क्रियायें होती हैं, उसमें ज्ञेय पदार्थ निमित्त है, परंतु अज्ञानी को ऐसा लगता है कि निमित्त के कारण ज्ञान की भिन्न-भिन्न पर्यायें होती हैं, जबकि ज्ञान की भिन्न-भिन्न पर्यायें अपने कारण से हुई हैं, ऐसा न मानने से वह निमित्त (बाह्य पदार्थ) की मैत्री-प्रीति नहीं छोड़ता है।

जिसप्रकार शरीर-मन-वाणी-पैसा आदि ज्ञेयभूत होने से ज्ञान की पर्याय में वे ज्ञान के कारण से जानने में आ जाते हैं, परंतु अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि शरीरादि भिन्न-भिन्न थे तो मुझमें भिन्न-भिन्न ज्ञान की पर्याय हुई, इससे वह बाह्य पदार्थ की मैत्री नहीं छोड़ता है। बाह्य पदार्थ की मैत्री करना ही मिथ्यादर्शन है, जिससे वह अनंत काल तक संसार में घूमता है।

अज्ञानी जीव मानता है कि सुनने से ज्ञान होता है; इसलिये वह सुनने की मैत्रीपने को नहीं छोड़ता है। गुरु से ज्ञान होता है, ऐसा माननेवाला जीव गुरु के प्रति का प्रेम नहीं छोड़ता है। जिस पदार्थ से स्वयं को लाभ होता हो, वह उस पदार्थ को क्यों छोड़ेगा? कभी नहीं छोड़ेगा। जबकि ज्ञान की पर्याय अंतर से आती है, तब श्रवण शास्त्र और गुरु को निमित्त कहा जाता है। जब हम परमागममंदिर के बाहर खड़े थे और फिर हम परमागममंदिर के अंदर आये और वहाँ पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन श्रवण किया तो उस समय हमारी जो ज्ञान की दशा हुई, वह दशा हम जब मंदिर के बाहर खड़े थे, तब नहीं हुई थी, अंदर में जाकर स्वामीजी का प्रवचन श्रवण किया तब ऐसी ज्ञान की दशा हुई, ऐसा अज्ञानी जीव मानता है। वास्तव में ऐसी ज्ञान की पर्याय उस समय की योग्यता से उत्पन्न हुई है। प्रवचन श्रवण करने से नहीं। यदि प्रवचन श्रवण करने से ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती हो तो सभी श्रवण करनेवाले जीवों को एक जैसी ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होना चाहिये, परंतु सबको एक जैसी ज्ञान की पर्याय उत्पन्न नहीं होती किंतु भिन्न-भिन्न ज्ञान की पर्यायें अपनी योग्यता के कारण से उत्पन्न होती है। अज्ञानी जीव की दृष्टि बाह्य पदार्थों (निमित्त) पर होने से उसे ज्ञान होता है कि पहले ज्ञान की पर्याय ऐसी नहीं थी अब ऐसी ज्ञान की पर्याय हुई तो वह निमित्त अर्थात् ज्ञेयभूतपदार्थों से हुई है, ऐसी भ्रमणा उसे हो जाती है। इस भ्रमणा के कारण ही वह संसार में परिभ्रमण करता है।

आत्मविवेक शिथिल (-विपरीत) हुआ होने से अत्यंत बहिर्मुख होने के कारण अज्ञानी जीव आत्मप्राप्ति से दूर ही है।

अज्ञानी जीव मानता है कि निमित्त-बाह्य पदार्थों से ज्ञान की पर्याय होती है, तो उसका लक्ष्य परपदार्थ, निमित्त, राग और पर्याय पर ही रहता है। वहाँ से लक्ष्य छोड़कर त्रैकालिक शुद्ध चैतन्य आत्मा पर लक्ष्य करना चाहिये, वह नहीं करता, जिससे वह आत्मविवेक से शिथिल-विपरीत हो गया है। इस कारण से उसकी दृष्टि बारंबार बाह्य

पदार्थों पर ही जाती है। त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावी आत्मा भिन्न-भिन्न ज्ञेयों से, राग से और ज्ञान की पर्यायों से भिन्न है। ऐसे आत्मा की ओर ज्ञानपर्याय को झुकाना चाहिये, वर्तमान ज्ञानपर्याय द्वारा उसका आश्रय लेना चाहिये अर्थात् उसके सन्मुख होना चाहिये। वह कार्य न करके निमित्त, राग और पर्याय पर लक्ष्य करता है, जिससे वह द्रव्यस्वभाव के सन्मुख नहीं हो सकेगा क्योंकि उसे पर्यायबुद्धि है। जबकि पर्याय तो ज्ञान का ज्ञेय है और वह त्रैकालिक आत्मद्रव्य के ध्रुवस्वरूप से भिन्न है क्योंकि पर्याय एक समय की है और आत्मद्रव्य अनादि-अनंत नित्य अवस्थित है। पर्याय, पर्याय में ही है; द्रव्य, द्रव्य में ही है। पर्याय ध्रुवस्वरूप से भिन्न पर्यायरूप रहकर द्रव्य की ओर झुकती है, तब आत्मद्रव्य का सच्चा अनुभव होता है।

अज्ञानी जीव की दृष्टि निमित्त, राग और वर्तमान पर्याय पर होने से वह अत्यंत बहिर्मुख है। पर्याय बहिर्तत्त्व है क्योंकि वह अंतर्तत्त्व से स्वरूपपने भिन्न है। जिसे पर्याय ही का प्रेम हो, वह अत्यंत बहिर्मुख होने से मिथ्यादृष्टि है। जब परपदार्थ, कर्म बहिर्तत्त्व है तो राग-द्वेषादि वह अंत:तत्त्व है क्योंकि अपनी पर्याय में ही रागादि भाव होते हैं, शरीर-मन-वाणी में नहीं; इसलिये उन्हें अंत:तत्त्व कहा जाता है। (देखो, तत्त्वार्थसूत्र अ-२, सूत्र १) राग-द्वेषादि बहि:तत्त्व हैं तो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्यायें अंत:तत्त्व हैं। रागादि को बहि:तत्त्व इसलिये कहा गया कि वे हमारी पर्याय में से परिपूर्ण शुद्धता होने पर निकल जाते हैं। निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्यायें बहिरतत्त्व हैं तो त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध आत्मा वह अंत:तत्त्व है। निर्मल पर्यायों को बहिरतत्त्व कहने का कारण यह है कि वे एक समय की अवस्थारूप ही हैं और आत्मा तो तीनों काल शाश्वत रहनेवाला होने से वह अंत:तत्त्व है।

श्री नियमसार की गाथा ३८ में भी कहा है कि—जीवादि बाह्यतत्त्व होने से हेय है और अपना त्रिकाली आत्मा उपादेय है। त्रैकालिक आत्मा को कारणसमयसार, कारणपरमात्मा और परमपारिणामिकभावरूप भी कहने में आता है। जैसे—**ज्ञानगुण**

का क्षायोपशमिकभाव वह अंश है। उसका स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। अज्ञानी जीव उसे मात्र परप्रकाशक मानने से वह मिथ्याज्ञान है। तथापि वह ज्ञान का अंश होने से स्वतत्त्व हैं परंतु त्रैकालिक अंतःतत्त्व की अपेक्षा वह बहिरतत्त्व है क्योंकि वह एक क्षणिक अंश है और आत्मा शाश्वत चैतन्यतत्त्व है। केवलज्ञान की पर्याय भी क्षणिक अंश होने से वह त्रैकालिक आत्मा की अपेक्षा से बहिरतत्त्व है, उसका त्रैकालिक अंतःतत्त्व में अभाव है। त्रैकालिक ध्रुव आत्मद्रव्य को किसी भी अपेक्षा से बहिरतत्त्व कहा नहीं जा सकता है। वह तो सदाकाल अंतःतत्त्वरूप ही रहेगा। द्रव्य-पर्याय की ऐसी अलौकिक बात वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के मार्ग में ही है।

शुद्ध चैतन्य अद्वैत भगवान आत्मा के सन्मुख होकर वीतरागरूप परिणमन करना चाहिये। उसकी जगह अज्ञान के कारण पर निमित्त की मैत्री करने से पर्याय में मोह-राग-द्वेषरूप द्वैतपने से परिणमन कर रहा है, जिससे उसको आत्मा की प्राप्ति दूर ही है।

भगवान आत्मा ज्ञान-आनंदस्वभावी है, उसके आश्रय से सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रगट करता है, उसमें शुभराग निमित्त होता है, इसलिये कर्मकांड से ज्ञानकांड प्रचंड हुआ—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

इस शास्त्र में ज्ञानप्रधान कथन होने से ऐसा कहा गया है कि कर्मकांड से ज्ञानकांड प्रचंड होता है।

प्रचंड कर्मकांडः—दया-दानादि के शुभभाव की उग्रता।

प्रचंड ज्ञानकांडः—आत्मा में एकाग्रता पूर्वक प्रगट हुयी निर्मल पर्यायें।

जब साधक जीव को दया-दानादि के शुभभाव की उग्रता होती है, तब उसके शुभभाव को ज्ञानकांड का निमित्त बताने के लिये ऐसा व्यवहार से कहा जाता है कि कर्मकांड से ज्ञानकांड हुआ। वास्तव में कर्मकांड छोड़कर ज्ञानकांड होता है। धर्मी जीव राग की मंदता की उग्रता होने से निश्चय ज्ञान की प्राप्ति करता है, ऐसा व्यवहार से निमित्त का ज्ञान करने के लिये कहा जाता है। ज्ञान कराने का प्रयोजन यह है कि अनादि

से जो निमित्त का आश्रय है, उसको छोड़कर उपादान ऐसे निज आत्मा का आश्रय कर, जिससे तुझे धर्म प्रगट होगा। व्यवहार-शुभभाव से मुक्ति होती है, ऐसे एक धर्म की योग्यता ज्ञान कराने के लिये कही गयी है। जिस समय साधक जीव को क्रियानय की योग्यतावाला एक धर्म है, उसी समय ज्ञाननय की योग्यतावाला भी एक धर्म है। ऐसा नहीं है कि किसी को कर्मकांड से मुक्ति होती है और किसी को ज्ञानकांड से। परमार्थरूप से तो ज्ञानकांड से ही मुक्ति होती है, यह निश्चयनय है और शुभभाव से मुक्ति होती है, ऐसा भूतनैगमनय से कहा जाता है क्योंकि पूर्व में जो राग था, उसका अभाव करके निश्चय प्रगट होता है; इसलिये असद्भूत व्यवहारनय से ऐसा कहा जाता है कि शुभभाव से मुक्ति हुई।

श्री परमात्मप्रकाश अधिकार २, दोहा १४ वें की टीका में आया है कि—'अत्राह शिष्यः। निश्चयमोक्षमार्गो निर्विकल्पः तत्काले सविकल्पमोक्षमार्गो नास्ति कथं सधको भवतीति। अत्र परिहारमाह। भूतनैगमनयेन परम्परया भवतीति।'

इसका आशय है कि—यहाँ शिष्य प्रश्न करता है—निश्चय मोक्षमार्ग निर्विकल्प है। उस समय सविकल्प मोक्षमार्ग है नहीं, तब वह किसप्रकार साधक हो सकता है? उसका परिहार करते हुए टीकाकार कहते हैं कि—भूतनैगमनय से पंरपरा (साधक) होता है।

इसप्रकार भूतनैगमनय से अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय के शुभराग का अभाव होकर निश्चय वीतरागरत्नत्रय प्रगट होता है, इसलिए अभूतार्थरूप व्यवहारनय से 'कर्मकांड द्वारा ज्ञानकांड हुआ' ऐसा कहा जाता है।

आत्मा बध्य है—हनने योग्य है और मोह घातक—हननेवाला है

आत्मद्रव्य नहीं, परंतु आत्मा की वर्तमान पर्याय हनने योग्य (बध्य) है और मोह हननेवाला (घातक) है। आत्मा की निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय हनने योग्य है और मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्यायें हननेवाली हैं। परवस्तु से

लाभ-नुकसान और पुण्यभाव से धर्म होता है, ऐसा मानना वह मोहभाव है। श्री समयसार कलश ४३ में कहा है कि 'स्व-पर की एकत्वबुद्धिरूप भ्रांति वह मोह है।' पर (परपदार्थ, विकार) की चाहना, वह मोह है; तत्त्व की अप्रतिपत्ति, वह मोह है। अनंत शक्ति का भंडार अंत:तत्त्व विराजमान है, उसको अंतर्मुख होकर न माननेरूप भाव एवं निमित्त की मैत्री करनेवाला भाव अर्थात् आत्मा की पर्याय हनने योग्य है और मोह आत्मा को अर्थात् आत्मा की पर्याय को हननेवाला है, जिससे वह अनाकुल शांतरस को उत्पन्न नहीं होने देता है।

शुद्ध चैतन्यस्वभाव को मोह-राग-द्वेष से सम्यक्भेदज्ञानपूर्वक भिन्न करते हैं, वे धर्मात्मा हैं।

त्रैकालिक शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। शरीर, मन, वाणी तो जड़ है, पर है। देव-शास्त्र-गुरु भी अपनी आत्मा की अपेक्षा पर हैं और पर्याय में राग-द्वेष होने पर भी राग-द्वेष और वर्तमान पर्यायरूप आत्मा नहीं है। त्रैकालिक आत्मा तो निर्विकार ज्ञानस्वरूप है। पर, राग और पर्याय में रुचि होने से आत्मा अर्थात् आत्मा की पर्याय हननेयोग्य थी और राग हननेवाला था। अब राग और पर्याय की रुचि छोड़कर उससे भिन्न होकर शुद्ध ज्ञान-आनंदस्वरूप आत्मा का अनुभव करके धर्मी जीव आत्मा और मोह-राग-द्वेष आदि भावों का विभाग करता है। इसप्रकार आत्मा और मोह के विभाग का ज्ञान अनादि पुद्गल कर्म रहित मोह आदि को भिन्न करता है।

आत्मानुभव के प्रभाव से परिणति आत्मा में निश्चल होने से धर्मी जीव शांत समुद्र की भाँति अति निष्कंप रहता है।

धर्मी जीव ने निज शुद्ध चैतन्य आत्मा के अनुभव के उग्रप्रभाव से अपनी परिणति को निश्चल की है। परंतु निमित्त, व्यवहाररत्नत्रय के प्रभाव से निर्मल परिणति निश्चल नहीं होती है। जिसप्रकार जब समुद्र शांत होता है, तब वह स्थिर दिखायी देता है, उसीप्रकार ज्ञानी की परिणति अपने शुद्धस्वभाव के साथ अभेद होने पर स्वयं अति निष्कंप-स्थिर-शांत रहती है।

ज्ञानी ज्ञेयभूत पदार्थों को जान लेता है परंतु किसी भी ज्ञेय के प्रति उसे मैत्री नहीं होती।

अज्ञानदशा में पर में सुखबुद्धि थी, तब अनेक बाह्य पदार्थों के साथ मैत्री प्रवर्तती थी। अब अपना ज्ञान और सुख अपने में है, ऐसा आत्मा के सन्मुख होकर अनुभव किया है और आत्मा में परिपूर्ण एकाग्रता करके केवलज्ञान दशा प्रगट की जिससे स्व-पर प्रकाशक ज्ञान में जगत के समस्त ज्ञेयभूत पदार्थ जानने में आ जाते हैं। जिसप्रकार दर्पण में वस्तुएँ प्रतिबिम्बित होती हैं, उसीप्रकार चैतन्यदर्पण में जगत की वस्तुएँ जानने में आ जाती हैं। अत: ज्ञानी जीव को ज्ञेयभूत बाह्य पदार्थों के प्रति मैत्री नहीं प्रवर्तती है।

ज्ञानी अपने ज्ञायकस्वभावी आत्मा में उग्र पुरुषार्थपूर्वक स्थिर होकर राग-द्वेष का नाश करता है।

त्रैकालिक शुद्ध चिदानंदस्वरूप भगवान आत्मा शरीर, मन, वाणी, राग और एक समय की पर्याय से भिन्न है। ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर अनुभव करता हुआ ज्ञानी अपने में ही सुस्थिर रहता है। पहले बहिर्मुख दशा थी; अब अंतर्मुखदशा करने से राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते, जिससे नये जड़ कर्मों का बंधन नहीं होता; इसलिये इस जीव ने राग-द्वेष की परिणति दूर की, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में राग-द्वेष को दूर नहीं करता परंतु अपने द्रव्यस्वभाव में स्थित होने से उसकी उत्पत्ति नहीं होती तो राग-द्वेष दूर किये, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

ज्ञानानंदस्वभावी भगवान आत्मा की प्राप्ति करना, यही एक अपूर्व है

अनादिकाल से अनंत भव किये—नरक, चींटी, कौआ, कुत्ता, स्वर्ग और मनुष्य के अनेक भव किये परंतु कहीं पर भी ज्ञानानंद आत्मा का अनुभव नहीं हुआ। द्रव्यलिंगी मुनिपना धारण करके स्वर्ग में गया परंतु वह अपूर्व नहीं है, क्योंकि ऐसे भव तो इस जीव ने अनंत बार किये और उनका संयोग भी मिला है। धर्म के नाम पर व्रत,

तप और क्रियाकांड किया परंतु वह अपूर्व नहीं, तो फिर अपूर्व क्या है ? त्रैकालिक ज्ञानानंदस्वभावी भगवान आत्मा की पर्याय में प्राप्ति करना, वह अपूर्व है। आत्मा कैसा है ? ज्ञान और वीतराग आनंदस्वभावी आत्मा है, उसकी सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान करके वीतरागी पर्याय प्रगट करना, वह अपूर्व है।

आचार्य भगवान उल्लास में आकर सबको निमंत्रण देते हैं कि जगत के सर्व जीवो ज्ञानानंद परमात्मदशा को अवश्य प्राप्त करो।

अब आचार्य भगवान उल्लास में आकर सबको निमंत्रण देते हैं कि जगत अर्थात् जगत में रहनेवाले हे जीवों ! पुण्य-पाप और वर्तमान पर्याय से रहित त्रैकालिक द्रव्यसामान्यरूप शुद्ध चैतन्य आत्मा की सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान करके उसका अनुभव करो और उसमें उग्र पुरुषार्थ द्वारा स्थिर होकर परम आनंददशा को अवश्य प्राप्त करो एकमात्र यही करनेयोग्य है। बहिरात्मपना छोड़कर आत्मा के सन्मुख होकर अंतरात्मपना प्रगट करके विशेष आत्मिकपुरुषार्थ करके परमात्मदशा को प्राप्त करो। इसप्रकार आचार्य भगवान का आदेश और उपदेश है।

अज्ञानी की अज्ञानदशा और ज्ञानी की ज्ञानदशा के बीच अंतर

शुद्ध चैतन्य आत्मा की प्राप्ति के उपाय में प्रथम आचार्य भगवान ने संसार का कारण बतलाया था और पश्चात् संसार टालने का और शुद्ध आत्मा की प्राप्ति का प्रकार-उपाय बतलाया। उसका सार निम्नानुसार है:—

(१) (अ) अज्ञानी जीव को मोहभावना है, उसमें अनादि पुद्गलकर्म निमित्त है।

(ब) ज्ञानी को ज्ञानकांड प्रचंड है अर्थात् ज्ञानस्वभाव में एकाग्रपना है। उसमें कर्मकांड (व्यवहाररत्नत्रय) निमित्त है और ज्ञानकांड से अनादि कर्मरचित मोह को भिन्न करता है।

(२) (अ) अज्ञानी जीव को मोहभाव का प्रभाव है।

(ब) ज्ञानी को आत्मा के अभाव का प्रभाव है।

(३) (अ) अज्ञानी को आत्मपरिणति मोहभाव से चक्कर खाती है।

(ब) ज्ञानी की आत्मपरिणति आत्मभावना के कारण निश्चल रहती है।

(४) (अ) अज्ञानी तूफानी समुद्र की भाँति अपने में ही क्षुब्ध होता है।

(ब) ज्ञानी शांत समुद्र की भाँति अपने में ही अति निष्कंप रहता है।

(५) (अ) अज्ञानी क्रमशः प्रवर्तमान अनंत ज्ञानपर्यायों से परिवर्तन को प्राप्त होता है। अतः अज्ञानी को ज्ञानपर्यायों के निमित्तरूप ऐसे ज्ञेयभूत बाह्य पदार्थों के साथ मैत्री प्रवर्तती है।

(ब) ज्ञानी एकसाथ ही अनंत ज्ञानपर्यायों में व्याप्त होकर सर्वथा परिवर्तन को प्राप्त नहीं होता। अतः ज्ञानी को ज्ञानपर्यायों के निमित्तरूप ऐसे ज्ञेयभूत बाह्य पदार्थों के साथ वास्तव में मैत्री नहीं प्रवर्तती है।

(६) (अ) अज्ञानी को आत्मविवेक शिथिल (विपरीत) हुआ है।

(ब) ज्ञानी को आत्मविवेक सुस्थित हुआ है।

(७) (अ) अज्ञानी अत्यंत बहिर्मुख है।

(ब) ज्ञानी अत्यंत अंतर्मुख हुआ है, क्योंकि आत्मवस्तु नित्यानंदस्वरूप होने से वह उसके सन्मुख हो गया है।

(८) (अ) अज्ञानी राग-द्वेष द्वैतरूप परिणमित होता है।

(ब) ज्ञानी राग-द्वेष द्वैतरूप परिणति से दूर हुआ है।

(९) (अ) अज्ञानी को नवीन पुद्गलकर्मों का बंध होता है।

(ब) ज्ञानी को नवीन पुद्गलकर्मों का बंध नहीं होता है।

(१०) (अ) अज्ञानी को आत्मप्राप्ति दूर ही है।

(ब) ज्ञानी अपूर्व ज्ञानानंदस्वभावी भगवान आत्मा को आत्यंतिकरूप से प्राप्त करता है।

अब आचार्यदेव सारे जगत के जीवों को कहते हैं कि त्रैकालिक आत्मा तो चैतन्यनूर का पूर और आनंद का सागर है। ऐसे आत्मा में सम्यक् श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक डुबकी लगाने से—लीनता करने से परमात्मदशा अवश्य प्राप्त होती है। यह कार्य करनेयोग्य है, इसलिये अवश्य करो।

परनति सब जीवन की, तीन भाँति वरनी
एक पुण्य, एक पाप, एक रागहरनी ॥टेक॥
तामें शुभ अशुभ बन्ध, दोय करैं कर्म बन्ध,
वीतराग परनति ही भव समुद्र तरनी ॥१॥
जावत शुद्धोपयोग, पावत नाहीं मनोग,
तावत ही करन जोग, कही पुण्य करनी ॥२॥
त्याग शुभ क्रिया कलाप, करो मत कदाच पाप,
शुभ में न मगन होय, शुद्धता विसरनी ॥३॥
उंच-उंच दशा धारि, चित्त प्रमाद को विडारि,
ऊंचली दशातैं मति, गिरो अधो-अधो धरनी ॥४॥
'भागचंद' या प्रकार, जीव लहै सुख अपार,
याके तिरधारि स्याद्वाद की उचरनी ॥५॥

चैतन्य-विभूति

अरे, कहाँ मेरी चैतन्यविभूति! और कहाँ यह इंद्रपद इत्यादि बाह्य पुण्य के ठाठ! पुण्य यह तो चैतन्य की विकृति का फल है, इसमें मेरी महत्ता नहीं है; मेरी महत्ता तो मेरे चैतन्य की विशुद्धता में ही है। चैतन्य की महत्ता में जो अतीन्द्रिय आनंद का समुद्र उछलता है, उसके समक्ष जगत के किसी भी फल की महत्ता ज्ञानी को नहीं है। ज्ञानी चैतन्य की विभूति के समक्ष जगत की विभूति को धूल के समान समझकर, त्याग करके चैतन्य की साधना करते हैं।

ज्ञानगोष्ठी

—: ध्यान और ध्येय संबंधी वचनामृत :—

❀ **प्रमाण पूज्य है अथवा निश्चय पूज्य है ?**

प्रमाण पूज्य नहीं क्योंकि वह व्यवहारनय के विषय का निषेध नहीं करता परंतु साथ में मिलाता है; इसलिए प्रयोजनभूत निर्विकल्पों की सिद्धि नहीं होती।

निश्चय एक ही पूज्य है क्योंकि वह व्यवहारनय के विषय का निषेधपूर्वक एकमात्र त्रैकालिक चैतन्य सामान्यरूप द्रव्यस्वभाव का आश्रय करने की प्रेरणा देता है, इसलिये प्रयोजनभूत निर्विकल्पपने की सिद्धि होती है।

किसी जगह पर प्रमाण को पूज्य कहा गया हो; वहाँ तो प्रमाण दोनों नयों के विषय को जानता हुआ होने से जानने की अपेक्षा से उसे पूज्य कहा है परंतु आश्रय की अपेक्षा से तो निश्चयनय एक ही पूज्य है।

❀ त्रिकाल द्रव्यसामान्य, वह निश्चयनय का विषय है और उसके आश्रय से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है, वह पर्यायनय का विषय है। उन दोनों को एक करना, वह प्रमाण का विषय है; उसके उपरांत जो कोई उसे निश्चयनय का विषय माने तो वह विपरीतपना है, निश्चयनय के विषय में एकमात्र शुद्ध पर्याय बिना का त्रैकालिक ध्रुवतत्त्व होता है।

❀ कोई कहे कि 'द्रव्य और पर्याय एक है, ऐसा हम नहीं मानते, परंतु आश्रय का विषय शुद्धपर्यायसहित अभेद द्रव्य है, ऐसा मानते हैं'—तो वह मूढ़दृष्टि है, विपरीतदृष्टि है; वास्तव में तो उसे अनादि से जो दृष्टि है, वही की वही पर्यायदृष्टि है। यदि आश्रय का विषय पर्यायसहित का द्रव्य हो तो आश्रय कौन करेगा? —पर्याय को तो वह आश्रय का विषय मानता है, तो फिर आश्रय करनेवाला

कौन ? आश्रय करनेवाला और आश्रय का विषय भिन्न है।

❀ द्रव्य में पर्याय अभेद हो गयी ऐसा किसी जगह पर लिखा हुआ हो तो उसका अर्थ क्या है ?

— वहाँ पर्याय द्रव्य के सन्मुख झुकी है, ऐसा बतलाया गया है। इसलिये पर्याय द्रव्य में अभेद हो गयी, ऐसा कहा है। अनादि से पर्याय विमुख थी, वह अब द्रव्यसन्मुख हुई, वह बतलाने के लिए ऐसा कहा है। पर्याय द्रव्य में मिलकर द्रव्यरूप से नहीं हो जाती है।

❀ मोक्षमार्ग की क्षायोपशमिकभावरूप शुद्धपर्याय परमपारिणामिकभाव का ध्यान करती है। यदि उस पर्याय को पारिणामिकभाव में अभेद करके उसे ध्यान का विषय मानने में आये तो पारिणामिकभाव तथा क्षायोपशमिकभाव—ऐसे दो भाव भिन्न हैं, वे भिन्न नहीं रहेंगे। इसप्रकार दृष्टि और दृष्टि का विषय—दोनों सिद्ध न होने से वह मान्यता विपरीत है।

❀ 'शुद्धपर्यायसहित का द्रव्य आश्रय करने योग्य है' ऐसा यदि कोई माने तो वह सर्वथा विपरीतपना है, क्योंकि पर्यायरहित का एकमात्र द्रव्यसामानय का ही आश्रय करने से शुद्ध पर्याय उत्पन्न होती है। इसप्रकार द्रव्यसामान्य के आश्रय करने का प्रयोजन सिद्ध होता है। परंतु पर्यायसहित के द्रव्य का आश्रय से प्रयोजन क्या ?—पर्याय में से नवीन पर्याय उत्पन्न नहीं होती, इसलिये पर्याय सहित के द्रव्य का आश्रय करने से शुद्ध पर्याय उत्पन्न किसप्रकार हो ?—इसप्रकार प्रयोजन सिद्ध न होने से वह निष्फल है।

❀ श्री नियमसार में गाथा ९१ की गाथा में कहा है कि —'त्रिकाल-निरावरण, नित्य आनंद जिसका एक लक्षण है, ऐसा निरंजन निज परमपारिणामिकभावरूप कारणपरमात्मा वह आत्मा है; उसके स्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण का रूप वह वास्तव में निश्चयरत्नत्रय है।'

तात्पर्य यह है कि—ऐसा जो त्रैकालिक परमपारिणामिकभावस्वरूप कारणपरमात्मा ही दृष्टि का विशय है और उसी का आश्रय करने से निश्चयरत्नत्रय प्रगट होता है।

❀ श्री नियमसार गाथा ३८ की टीका में मुनिराज कहते हैं—"अनादि-अनंत अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला शुद्ध-सहज-परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है अति-आसन्न भव्य जीवों को ऐसे निज परमात्मा के अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है।"

अर्थात्—शुद्ध पर्यायसहित का आत्मा वह वास्तव में निश्चयनय का 'आत्मा' नहीं, वह कारणपरमात्मा नहीं; इसलिये वह, आसन्न भव्य जीवों को उपादेय नहीं है।

❀ उसी गाथा को पूर्ण करने पर टीकाकार मुनिराज ने श्लोक ५४ में भी कारणपरमात्मा कैसा है? उसे समझाते हुए कहा है कि—

'सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होने योग्य भाव से दूर है'—ऐसा कारणपरमात्मा उपादेय है। अर्थात् समस्त नाश होने योग्य भावों से दूर ऐसा कारणपरमात्मा वह ध्यान का विषय है। शुद्ध पर्याय भी प्रतिक्षण नाशवान भाव होने से, कारणपरमात्मा उससे दूर है।

❀ श्री नियमसार में १४वीं गाथा की टीका पूर्ण करने पर मुनिराज २४ वें श्लोक द्वारा कहते हैं कि—

"परभाव होने पर भी, सहज गुणमणि की खानरूप तथा पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्ध दृष्टि पुरुष भजता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का (मुक्तिसुंदरी का) वल्लभ बनता है।"

देखो, इस कलश में तीन बातें कही हैं—

(१) शुद्धदृष्टि पुरुष किसको कहना?—जो सहज गुणमणि की खानरूप और पूर्ण ज्ञानवाला शुद्ध आत्मा को भजता हो, उसे शुद्धदृष्टि पुरुष कहा जाता है।

(२) शुद्ध आत्मा कैसा है? जो सहज गुणमणि की खानरूप और पूर्ण ज्ञानवाला आत्मा, वह शुद्ध आत्मा है। देखो, शुद्धपर्यायसहित का शुद्ध आत्मा, ऐसा नहीं कहा गया है; सहज गुणों की खानरूप और पूर्ण ज्ञानस्वभाववाले को ही शुद्ध आत्मा कहा है।

(३) ऐसे शुद्ध आत्मा का भजन करने से मुक्तिरूपी सुंदरी का बल्लभ बना जा सकता है। अन्य किसी प्रकार आत्मा को अन्यथा मानकर - भजन करेगा अथवा शुद्धपर्यायसहित के आत्मा का भजन करेगा, वह मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकेगा, ऐसा उसमें आ जाता है।

श्री नियमसार, कलश २६ में भी विशेष स्पष्ट करने पर मुनिराज कहते हैं कि:—

'जीवतत्त्व.... क्वचित् सहज पर्यायों सहित विलसता है और क्वचित् अशुद्ध पर्यायों सहित विलसता है। इन सबसे सहित होने पर भी जो इन सबसे रहित है, ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए सदा नमता हूँ, भाता हूँ।

अहा! संक्षिप्त शब्दों में कितनी गंभीर बात सरलतापूर्वक आचार्यदेव ने समझायी है। 'शुद्ध परिणति किसप्रकार प्रगट हो?' जिज्ञासु जीव के ऐसे प्रश्न का निराकरण करने के लिये मुनिराज कहते हैं कि शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों से रहित ऐसा जो त्रैकालिक जीवतत्त्व, उसकी भावना करने से—ध्यान करने से सकल अर्थ की सिद्धि होती है।

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम,
बीजुं कहिये केटलुं, कर विचार तो पाम।

यहाँ पर श्रीमद् राजचंद्रजी ने भी ऐसा कहा है कि त्रैकालिक शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, चैतन्यघन, सुख का धाम ऐसा ध्रुव आत्मा है; उसका विचार करने से अर्थात् ऐसे आत्मस्वभाव की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है।

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है,
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सदृष्टि निश्चय होय है।

श्री समयसार की ११वीं गाथा जिनशासन का प्राण है। इसमें आचार्यदेव का यह कहना है कि त्रैकालिक ध्रुवस्वभाव एक ही भूतार्थ है। समस्त शुद्ध-अशुद्धपर्याय को व्यवहार अर्थात् अभूतार्थ, असत्यार्थ कहकर, आश्रयभूत त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव से उनको भिन्न बतलायी है। और ऐसे भूतार्थस्वरूप त्रैकालिक ध्रुवस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा दृढ़पने स्थापित किया है।

नहिं अप्रमत्त प्रमत्त नहिं, जो एक ज्ञायकभाव है,
इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञात वो तो धो हि है।

श्री समयसार की छठवीं गाथा में कुंदकुंदाचार्यदेव कहते हैं कि 'जो ज्ञायकभाव है, वह अप्रमत्त भी नहीं और प्रमत्त भी नहीं' अर्थात् दृष्टि का विषय जो एक ज्ञायकभाव है, उसे अप्रमत्त और प्रमत्त ऐसी समस्त पर्यायों से भिन्न बतलाया गया है।

❀ श्री समयसार की गाथा ३२० की टीका करते हुए श्री जयसेनाचार्यदेव कहते हैं कि

"ध्याता पुरुष ऐसा भाता है कि 'जो सकलनिरावरण-अखण्ड-एक प्रत्यक्षप्रतिभासमय-अविनश्वर-शुद्ध-पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ' परंतु ऐसा नहीं भाता कि 'खंडज्ञानरूप मैं हूँ।' अर्थात् ध्याता पुरुष खंडरूप पर्याय रहित अखंड सामान्य द्रव्यस्वभाव का ही ध्यान करता है।

❀ श्री प्रवचनसार गाथा १८१ की टीका में (पृष्ठ ३४१) श्री जयसेनाचार्यदेव कहते हैं कि—

××× अत्र योऽसौ रागादिविकल्पोपाधिरहितसमाधिलक्षणशुद्धोपयोग मुक्तिकारणं भणितः स तु शुद्धात्मद्रव्यलक्षणाद्धद्येयभूताच्छुद्धपारिणामिक-भावादभेदप्रधानद्रव्यार्थिकनयेनाभिन्नोऽपि भेदप्रधानपर्यायार्थिकनयेन भिन्नः।

कस्मादिति चेत्। अयमेकदेशनिरावरणत्वेन क्षायोपशमिकखण्डज्ञान-व्यक्तिरूपः स च पारिणामिक सकलावरणरहितत्वेनाखण्डज्ञानव्यक्तिरूपः, अयं तु सादिसान्तत्वेन विनश्वरः, स च अनाद्यनन्तत्वेनाविनश्वरः। यदि पुनरेकान्तेनाभेदो भवति तर्हि घटोत्पत्तौ मृत्पिण्डविनाशवत् ध्यानपर्यायविनाशे मोक्षे जाते सति ध्येयरूपपारिणामिकस्यापि विनाशो भवतीत्यर्थः। तत एव ज्ञायते शुद्धपारिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति, ध्यानभावनारूपो न भवति। कस्मात्। ध्यानस्य विनश्वरत्वादिति।

'×××यहाँ जो इस रागादिविकल्परूप उपाधिरहित समाधिलक्षण शुद्धोपयोग मुक्ति का कारण कहा है वह, शुद्धात्मद्रव्यस्वरूप और ध्येयभूत ऐसे शुद्ध पारिणामिकभाव से अभेद प्रधान द्रव्यार्थिकनय से अभिन्न होने पर भी, भेदप्रधान पर्यायार्थिकनय से भिन्न है। किसकारण से भिन्न है? यह (शुद्धोपयोग) एकदेशनिरावरणपने के कारण क्षायोपशमिक ऐसे खण्डज्ञान की व्यक्तिरूप है और वह (शुद्ध) पारिणामिक (भाव) सकल-आवरण-रहितपने के कारण अखण्डज्ञान की व्यक्तिरूप है; तथा यह (शुद्धोपयोग) सादिसान्तपने के कारण विनश्वर है और वह (शुद्ध पारिणामिकभाव) अनादि-अनंतपने के कारण अविनश्वर है।

तथा यदि एकांत से अभेद हो, जिसप्रकार घट की उत्पत्ति होने पर मृत्तिकापिण्ड का नाश होता है उसीप्रकार, मोक्ष उत्पन्न होने पर ध्यानपर्याय का विनाश होने से ध्येयरूप पारिणामिक (भाव) का जो विनाश हो।—ऐसा उसका अर्थ है। इससे (इस कथन से) जानने में आता है कि शुद्ध पारिणामिकभाव ध्येयरूप है, ध्यानभावनारूप नहीं। किसकारण से? ध्यान विनश्वर है।''

❀ अत्रे 'ध्येयभूताच्छुदपारिणामिकभावात् ध्येयभूत ऐसे शुद्ध पारिणामिकभाव से' इस कथन द्वारा शुद्ध पारिणामिकभाव को ही ध्यान का ध्येयभूत कहा है।

❀ शुद्ध पारिणामिकभाव और उसके आश्रय से प्रगट हुई शुद्ध पर्याय दोनों एक ही

आत्मद्रव्य के हैं, ऐसा ज्ञानप्रधानपने से ज्ञान कराया हो, तब उस शुद्धपर्याय को अभेदप्रधान द्रव्यार्थिकनय से शुद्धात्मद्रव्यस्वरूप पारिणामिकभाव से अभिन्न कहा जा सकता है। परंतु इस कथन से शुद्धनय के विषयरूप—ध्यान के ध्येयभूत—शुद्धात्मद्रव्य-सामान्य में शुद्धपर्याय विषयपने से—ध्येयपने से साथ में है, ऐसा न समझना। प्रकृत में ध्यान का ध्येय शुद्धपर्याय से भी रहित त्रिकाल भूतार्थ ऐसा शुद्धात्मद्रव्य सामान्य ही है।

❀ जो शुद्धनय के विषयभूत पारिणामिकभावस्वरूप निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्य में वर्तमान शुद्ध पर्याय विषयरूप से अभिन्न हो तो ध्यान अर्थात् शुद्ध पर्याय विनश्वर होने पर तद्-अभिन्न ध्येयरूप पारिणामिकभाव के—शुद्धात्मद्रव्यसामान्य के—विनाश का प्रसंग आ जायेगा; परंतु आचार्यदेव के उपरोक्त कथन से, ध्यान के ध्येयभूत शुद्धात्मद्रव्यरूप पारिणामिकभाव में वर्तमान शुद्ध पर्याय ध्येयरूप से—विषयरूप से नहीं आती—यह यथार्थपना स्पष्टरूप से सिद्ध होता है।

❀ पंचाध्यायी के द्रव्यसामान्य-अधिकार की गाथा ६५९, ६६० और ६६१ में भी कहा है कि—

'इस कथन द्वारा स्वयं की बुद्धि के अपराध से जो कोई एक निश्चयनय को भी अनेक है, ऐसा मानता है, वह खंडित हो गया है।

शुद्धद्रव्यार्थिक, इसप्रकार का एक शुद्धनिश्चय नाम का नय है तथा जो अशुद्धद्रव्यार्थिक इसप्रकार का नामवाला है, वह दूसरा अशुद्ध निश्चय नाम का नय है, इत्यादिक निश्चयनय के अनेक भेद जिसके मत में हैं, वह निश्चय से मिथ्यादृष्टि होने से नियम से सर्वज्ञ की आज्ञा उल्लंघन करनेवाला है... ६६०, ६६१।

ध्यान के ध्येयरूप—दृष्टि के विषयभूत—निजशुद्धात्मद्रव्यसामान्य का विषय करनेवाला निश्चयनय एक ही प्रकार का है तथापि जो जीव उसके अनेक भेद मानता है, उसको यहाँ इस श्लोक में मिथ्यादृष्टि और सर्वज्ञ की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला कहा है।

❀ श्री नियमसार शास्त्र में कलश ११९ तथा १२० में कहा है कि—''प्रगटरूप से सदाशिवमय ऐसे परमात्मतत्त्व में ध्यानावली होना भी शुद्धनय नहीं कहता।'वह है (अर्थात् ध्यानावली आत्मा में है)'ऐसा (मात्र) व्यवहारमार्ग में सतत कहा है। हे जिनेन्द्र! ऐसा वह तत्त्व (तूने नय द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप), अहो! महा इन्द्रजाल है।'' श्लोक ११९

''सम्यग्ज्ञान का आभूषण ऐसा यह परमात्मतत्त्व समस्त विकल्प समूहों से सर्वतः मुक्तः (सर्व ओर से रहित) है। (इसप्रकार) सर्वनय समूह संबंधी यह प्रपंच परमात्मतत्त्व में नहीं है तो फिर वह ध्यानावली इसमें किसप्रकार उत्पन्न हुई (अर्थात् ध्यानावली इस परमात्मतत्त्व में कैसे हो सकती है) सो कहो।'' श्लोक १२०

यहाँ इन श्लोकों में ध्यान का विषयभूत ऐसा शुद्धात्मद्रव्यसामान्यरूप निज ध्रुव परमात्मतत्त्व शुद्ध पर्याय से रहित है, ऐसा मुनिराज ने कहा है।

❀ श्री नियमसार गाथा ५० में कुंदकुंदाचार्यदेव ने कहा है कि सहज पारिणामिकभावलक्षण कारणसमयसार स्वद्रव्य होने से वह एक ही उपादेय है और क्षायिकादि चारों भाव परस्वभाव है, इसलिये परद्रव्य है, इस कारण वे हेय हैं; ऐसा कहकर शुद्ध पर्याय से रहित शुद्ध अंतःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य को ही ध्यान का विषय कहा है।

मोक्ष का कारण

मोक्ष के लिये हे जीव! तुझे शुद्ध रत्नत्रय करने योग्य है; उन रत्नत्रय के कारणरूप ऐसे कारणपरमात्मा को तू शीघ्र भज!—वह तू ही है; कहीं बाह्य में तेरा कारण नहीं है; अंतर में तेरा जो परमस्वरूप है, उसी को तू कारणरूप से भज!

बुंदेलखंड के मुख्य तीर्थक्षेत्र पपौराजी में अध्यात्मिक शिक्षण-शिविर की अभूतपूर्व सफलता

इस वर्ष पपौराजी में कार्तिक की अष्टाह्निका के समय विशालरूप में १० दिन का शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया था, जिसका उद्घाटन सेठ श्री भगवानदास शोभालालजी सागरवालों के कर-कमलों द्वारा हुआ था। इस शिविर में पंडित श्री खीमचंदभाई, सोनगढ़; पंडित श्री बाबूभाई, फत्तेपुर; डॉ. श्री हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर; पंडित ज्ञानचंदजी, विदिशा; पंडित जवाहरलालजी, विदिशा आदि अनेक विद्वान पधारे थे। अध्यात्मिक शिक्षण शिविर का कार्यक्रम प्रतिदिन ९ घंटे चलता था। इस शिविर में ७५ गाँव के करीब ५ हजार भाई-बहिन आये थे। वे सभी भाई-बहिन ऐसी अध्यात्मिक बातें सुनकर अपने जीवन को धन्य मानते थे क्योंकि उन्होंने अपने जीवन ऐसी सच्ची धर्म की बातें कभी नहीं सुनी थीं। पपौराजी तीर्थक्षेत्र में मुनिराज नेमिसागरजी भी विराजमान थे, जो शिक्षण-शिविर के सभी कार्यक्रमों में विशेष रुचिपूर्वक भाग लेते थे। पपौराजी तीर्थक्षेत्र के शिक्षण-शिविर की अपूर्व सफलता देखकर चंदेरी, कुंडपुर, द्रौणगिरि आदि तीर्थक्षेत्रों की कमेटियों ने भी पंडित श्री बाबूभाई से इन तीर्थक्षेत्रों में भी शिक्षण-शिविर चलाने की मांग की और पूज्य स्वामीजी भी इन क्षेत्रों में पधारें ऐसी विनंति की थी। महावीर धर्मचक्र गुजरात संघ की ओर से पंडित श्री बाबूभाई ने पपौराजी तीर्थक्षेत्र में ५००० रुपये और देवगढ़, अहारजी, नैनगिरि, कुंडलपुर, द्रौणगिरि चंदेरी, खजुराहो आदि तीर्थक्षेत्रों में १-१ हजार रुपये के दान की घोषणा की थी। शिविर के अंतिम दिन एक विशाल कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया गया जो बहुत ही सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ था।

शिविर के अंत में पपौराजी तीर्थक्षेत्र कमेटी ने पूज्य स्वामीजी का भी बहुत-बहुत आभार माना कि जिनके परम पुनित प्रभावना के उदय से सर्वत्र जैन समाज में एक विशेष प्रकार की धार्मिक जागृति आ गयी है।

पपौराजी शिक्षण-शिविर के पश्चात् पंडित श्री खीमचंदभाई, पंडितश्री बाबूभाई, पंडित हुकमचंदजी शास्त्री, सेठ श्री गोदिकाजी जयपुर आदि बुंदेलखंड के तीर्थक्षेत्र देवगढ़, अहारजी, नैनागिर, कुंडलपुर, द्रौणगिरि, खजुराहो, चंदेरी आदि की यात्रा करते हुए टीकमगढ़, ललितपुर, दमोह, छतरपुर, वरायडा, सागर आदि नगरों में भी गये थे। सभी जगह पर विद्वानों द्वारा सुबह-दोपहर-रात्रि को प्रवचन होते थे। जिन्हें जैन-जैनेत्तर समाज शांति एवं रुचिपूर्वक सुनती थी। विद्वानों के जगह-जगह पर प्रवचन होने से... वीतराग धर्म की बहुत-बहुत प्रभावना हुई।

इस वर्ष ललितपुर में ग्रीष्मऋतु के समय अध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किये जाने का निश्चय हुआ है।

विविध समाचार

सोनगढ़ – पूज्य स्वामीजी सुख शांति में विराजमान हैं। तारीख २७–११–७५ को श्री प्रवचनसार शास्त्र पर प्रवचन पूर्ण करने के पश्चात् तारीख २८–११–७५ से सुबह में श्री समयसाररूपी भागवत शास्त्र पर पूज्य स्वामीजी ने अपूर्व प्रवचन करना प्रारंभ किया है। दोपहर में श्री नियमसार के परमसमाधि अधिकार पर प्रवचन पूर्ण करने के पश्चात् परमभक्ति अधिकार पर प्रवचन प्रारंभ किया है।

सोलापुर में आध्यात्मिक शिक्षण–प्रशिक्षण शिविर

विश्ववंद्य महावीर भगवान की दिव्यधर्म देशना और जैनदर्शन के सच्चे तत्त्वों को जन–जन तक पहुँचाने के लिये श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के सहयोग से स्वाध्याय मंडल सोलापुर (महाराष्ट्र) द्वारा श्री वीतराग–विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का नववाँ शिक्षण–प्रशिक्षण शिविर दिनांक २६–१२–७५ से ९–१–७६ तक सोलापुर में आयोजन किया जा रहा है। इस शिविर में अध्यापक बंधुओं को शिक्षण विधि द्वारा प्रशिक्षित किया जायेगा। इस शिविर में सोलापुर ही नहीं अपितु सारे महाराष्ट्र के विभिन्न भागों से अध्यात्मिक बंधु, जैनधर्म की अभिरुचि रखनेवाले सभी आबाल–वृद्ध इस शिविर में सस्नेह आमंत्रित हैं और आगंतुकों के आवास तथा भोजनादि की व्यवस्था मंडल द्वारा की गयी है।

इस आध्यात्मिक शिक्षण–प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन २६–१२–७५ को श्री नवनीतभाई चुनीलाल जबेरी के शुभहस्त से होगा। शिविर में पंडित श्री बाबूभाई महेता फतेपुर, पंडित श्री खीमचंदभाई, डॉ. हुकमचंद भारिल्ल जयपुर, पंडित रतनचंद भारिल्ल विदिशा आदि अनेक विद्वान भी पधारेंगे। जिनके सारगर्भित आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ प्राप्त होगा। आप अपने पधारने की सूचना २०–१२–७५ तक नीचे लिखे दोनों पतों पर देने की कृपा करें।

मंत्री, परीक्षाबोर्ड टोडरमल स्मारक भवन
ए–४, बापूनगर, जयपुर (राज.)

स्वाध्याय मंडल
सेठीराम भुवन, ३६३ दक्षिण कसबा
सोलापुर (महाराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) (३६६)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) प्रति २५००